Chapter-4

'रामचरित मानस' में भक्ति

भक्त हृदय तुलसी

तुलसीदास 'भक्तमाल' के सुमेरु माने गये हैं । उनका रामचरित मानस हिंदी काव्य माला का सुमेरु है । वह एक अनूठा महाकाव्य है जिसमें भक्ति की भूमि पर इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र, चरितकाव्य और लोक काव्य का अद्‌भुत समन्वय किया गया है । उसका नायक परब्रह्म परमेश्वर है । उसकी पुरातन प्रतिपाद्य वस्तु में नवीनता की कमनीय क्रांति है । उसका अंगी रस भक्तिरस है । उसमें सुंदर कवित्व और शिवमोक्षत्व की अलौकिक द्विवेणी है ।[१]

'मानस' के आरंभ से ही वंदनात्मक मंगलाचरण से तुलसी का भक्त हृदय हमारे सामने प्रगट होने लगता है ।[२] और मंगलाचरण के सातवें श्लोक तक पहुँचने पहुँचता ही तुलसी की आध्यात्मिक चिंतनधारा का हमे दिव्य दर्शन होता है । 'मानस' जैसा महाकाव्य लिखने का पुरुषार्थ करने पर भी तुलसी के मन में कोई ऐषणा नहीं है । उसका उद्देश्य है भीतर की शांती [३]!

---

१ तुलसी काव्य मीमांसा पृ. ४००

२ 'वंदे वाणि विनायको' - मानस १/१ श्लोक (मंगलाचरण)

३ स्वांतःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथा : मानस - १/७ श्लोक (मंगलाचरण)

'मानस' में आदि से अंत तक भक्ति का निर्वाह हुआ है । मानस का कोई काण्ड एसा नहीं है कि जिनमें एक या दूसरे रुप से भक्ति की चर्चा न हुई हो और एसा भी नहीं है कि कोई एक काण्ड को ही पकडकर हम तुलसी की भक्ति विषय की भावनाओं को पूरी तरह समझ पाए । 'मानस' की यह खूबी है कि हम कहीं भी से भक्ति की बातको उठा सकते है और सभी काण्डो में एक या दूसरे प्रकार से हमारी बात को पुष्टि मिलती है ।

'मानस' में पग पग पर भक्ति का महिमागान

तुलसीदासजी द्वारा

सब जानत प्रभु प्रभुता सोई

तदपि कहे बिनु रहा न कोई ।[१]

सकल सुकृत फल राम सनेहू ।[२]

ध्यान प्रथम जुग मख विधि दूजे ।

द्वापर परितोष प्रभु पूजे ।[३]

मानस के विविध पात्रों द्वारा

सकल सुकृत कर बड़ फलु एहू ।
राम सीय पद सहज सनेहू [४]।।

सकल सुमंगल मूल जग रघुबर परम सनेहू ।[५]

रामहि केवल प्रेम पिआरा ।[६]

---

१ रामचरित मानस १/१३
२ उपरीवत् १/१७
३ उपरीवत् १/२७
४ उपरीवत् २/७५
५ उपरीवत् २/२०७
६ उपरीवत् २/२३७

राम विमुख थलु नर न लरहीं ।[1]
राम बिमुख सिधि सपनेहु नाहीं ॥[2]
सोहन राम प्रेम बिनु ग्यान् ।
करनधार बिनु जिमि जलजानू ॥[3]
साधन सिद्धि राम पग नेहू ।[4]
जप जोग धर्म समूह ते नर भगति अनुपम पावई ।[5]
नर विविध कर्म अधर्म बहमत सोक प्रद सब त्यागहू ।
बिस्वास करि कह दास तुलसी राम पद अनुरागहू ॥[6]
राका रजनी भगति तब राम नाम सोई सोम ।
अपर नाम उड़गन बिमल बसहु भगत उर व्योम ॥[7]
दोप सीखा सम जुवति तन मन जनि होत पतंग ।
भजहिं राम तज़ि काम मद करहिं कदा सत्संग ॥[8]
देह धरेकर एह फलुभाई ।
भजिअ राम सब काम बिहाई ।[9]
राम विमुख संपति प्रभुताई ।
जाई रही पाई बिनु पाई ॥[10]
काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ ।
सब परिहरि रघुबीरहिं भजहु भजहि जेहि संत ॥[11]
तब लगि हृदय बसत खल नाना ।
लाभ मोह मत्सरमद नाना ।
जब लगि उरन बसत रघुनाथा ।
धारे चाप सायक कटि भाथा ॥[12]

---

१. रामचरित मानस २/२५२, २. २/२५६, ३. २/२७७, ४. २/२८९, ५. ३/६, ६. ३/३६, ७. ३/४२, ८. ३/४६, ९. ४/२३, १०. ५/२३, ११. ५/३८, १२. ५/४७

हरि हर निंदा सुनइ जो काना ।
होई पाप गो घात समाना ।[१]

सबतें सो दुर्लभ सुरराया ।
राम भगति रत्त गत मदमाया ।[२]

कागभुशुकि द्वारा

रामचंद्र के भजन बिनु जो चह पद निरबान ।[३]
रामकृपा बिनु सुनु खगराई ।
जानि न जाइ राम प्रभुताई ॥
जाने बिन न होई परतीती ।
बिनु परतिति होई नहि प्रीति ॥
प्रीति बिना नहिं भगति दिढ़ाई ।
जिमि खगपति जल कै चिकनाई [४]॥

गावहि वेद पुरान सुख किल हइय हरि भगति बिनु ।[५]

राम भजन बिनु मिटहि कि कामा ॥[६]

भाव बस्य भगवान ॥[७]

जप तप मख सम दम व्रत दाना ।
बिरति विवेक जोग बिग्याना ॥
सब कर फल रघुपति पद प्रेमा ।
तेहि बिनु कोउ न पावई छेमा ॥
राम विमुख लहि बिधि सु देही ।
कबि कोबिद प्रसंसहि तेही ॥[८]
काल धर्म नहीं व्यापहिं ताहीं ।
रघुपति चरन प्रीति अति जाहीं ॥[९]

---

१. रामचरित मानस ६/३२, २. ७/५४, ३. ७/७८, ४. ७/७९,
५. ७/९०/२, ६. ७/९२, ७. ७/९५, ८. ७/९६, ९. ७/४ ।

स्वयं राम के द्वारा

जातै बेगि द्रवहु मैं भाई ।
सो मम भगति भगत सुखदाई [१]।

करत कष्ट बहु पावई कोऊ ।
भक्ति हीन मोहि प्रिय नहिं सोऊ [२]।

भगतिवंत अति नीचउ प्रानी ।
मोहि प्रान प्रिय असि मम बानी [३]।।

पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ ।
सर्व भाव मम पट तजि मोहिं परम प्रिय सोई [४]।

अविद्या से छूटने का एकमात्र उपाय भक्ति ।

अज्ञानवश किये गये अनेक प्रकार के कर्म मनुष्य को बंधन में डालते हैं । इस बात को समझकर भक्तलोग शुभाशुभ कर्मो को त्यागकर भक्तिमार्ग में प्रवृत्त होते हैं ।

करहिं मोह बस नर अघ नाना ।[५]
स्वारथ रत परलोक नसाना ।
कालरुप तिन्हकहँ मैं भ्राता ।
सुभ अरु असुभ करम फल दाता ।

अस बिचारी जे परम सयाने ।
भजहिं मोहिं संसृति दुःख जाने ।
त्यागहिं कर्म शुभासुभदायक ।[६]
भजहिं मोहिं सुरनरमुनि नायक ।

---

१. रामचरित मानस ३/१५, २. ७/४५, ३. ७/८६, ४. ७/८७,
५-६. ७/४१ ।

प्रेमाभक्ति

उपर कर्म से मुक्त होकर भक्ति करने की बात बताई है, परंतु जीव को जनम जनम से कर्म करने की आदत पडी है, यह संस्कार इसे प्रवृत्ति मार्ग में ही प्रवृत्त करते हैं, तो इस कर्म का मैल जो चित्त पर लगा है वह कैसे छूटेगा ? – इस प्रश्न के जवाब में तुलसीजी प्रेम भक्ति के जल का प्रयोग करने की प्रेरणा देते हैं ।

छुटइ मल कि मलाहि के धोएँ ।
धृत कि पाव कोउ बारि बिलोएँ ।
प्रेम भगति जल बिनु रघुराई ।
अभि अंतर मल कबहुँ न जाई ।[१]

और प्रेमभक्ति का दर्शन कराने के लिए अरण्यकांड के सुतीक्ष्ण के भावों का चित्रण भी किया है । प्रेमभक्ति में मग्न व्यक्ति की देह की सुधि भी नहीं रहती है और वह प्रभु प्रेम में पागल हो जाता है । प्रभु प्रेम में नाचना, गाना, रोना यह सब प्रेमभक्ति के ही लक्षण है ।

निर्भर प्रेम मगन मुनि ग्यानी ।
कहि न जाई सो दसा भवानी ।
दिसि अस विदिसि पंथ नहिं सूझा ।
का मैं चलेउँ कहाँ नहीं बूझा ।

कबहुँक फिरि पाछे पुनि जाई ।
कबहुँक नृत्य करइ गुन गाई ।
अविरल प्रेम भगति मुनि पाई ।
प्रभु देखे तरु ओट लुकाई [२]।।

१. रामचरित मानस ७/४९
२. उपरीवत् ३/१०

हरि भक्ति का परिणाम ।

भक्ति की प्राप्ति के परिणाम स्वरुप आश्रम धर्म भी सहज ही छूट जाता है अर्थात् भक्त को किसी भी प्रकार का बंधन नहीं रहता [1]। अयोध्या वासियों की स्थिति के आधार पर तुलसीने इस बात को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है ।

चले हरषि तजि नगर नृप तापस बनिक भिखारि ।
जिमि हरि भगति पाइ स्त्रम तजहिं आस्रमी चारि ।।[1]

दुनिया के सारे जीवों को नचानेवाली माया जो जीव भक्ति के आधिन होता है इसे छोड देती है । पूरे विश्व पर अपनी सत्ता रखनेवाली माया प्रभु से भयभीत रहती है ।

भक्ति से माया से मुक्ति ।

देखी माया सब बिधि गाढी ।
अति सभीत जोरें कर ठाढ़ी ।
देखा जीव नचावइ जाही ।
देखी भगति जो छोरइ ताही [2]।

परम सुख का मार्ग भक्ति ।

पुराण और श्रृतिने भी जिस भक्ति का महिमागान किया है वह भक्ति ही लोक परलोक दोनो में सुख प्राप्त करने के लिए एकमात्र सरल और सुख देनेवाला मार्ग है । यह मत स्वयं भगवान राम का है ।

जौं परलोक इहाँ सुख चहहू ।
सुनि मम बचन हृदय दृढ़ गहहू ।
सुलभ सुखद मारग यह भाई ।
भगति मोरि पुरान स्रुति गाई ।[3]

---

१. रामचरित मानस ४/१६, २. १/२०२, ३. ७/४५

भक्ति परम परमार्थ का स्वरुप ।

वैसे तो जप, तप, योग, ज्ञानादि को परमार्थ के साधन कहे हैं परंतु मानस के अनुसार भक्ति परम परमार्थ है अर्थात् सब साधनों से श्रेष्ठ है ।

सखा परम परमारथ येहू ।
मन क्रम बचन राम वद नेहू [१]।

भक्ति का स्वरुप ।

ज्ञान विज्ञानादि की प्राप्ति के लिए बुद्धिमान लोग कितना भी यत्न करते हैं परंतु भक्तिमार्ग ज्ञान-विज्ञान को भी आधिन रखनेवाला है ।

सो सुतंत्र अवलंबन आना ।
तेहि आधिन ग्यान बिग्याना [२]।।

ज्ञान और विग्यान भक्ति के आधिन है और भक्ति को किसी भी के अवलंबन की आवश्यकता नहीं है । एसी स्वतंत्र स्वरुपा होने के कारण विमुक्त लोग भी भक्ति की आकांक्षा करते हैं ।

सुनहिं बिमुक्त बिरत अस बिषयी ।
लहहिं भगति गति संपति नई [३]।

ज्ञान और वैराग्य को भागवत् में भक्ति के संतान बताये है । मानस में तुलसी जी कहते है कि ज्ञान प्राप्ति के लिये योग आवश्यक है और ज्ञान मोक्ष को देनेवाला है ।

धर्म तें बिरति जोग ते ग्याना ।
ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना [४]।

---

१. रामचरित मानस २/९३, २. ३/१६,
३. रामचरित मानस ७/१५, ४. ३/१६

योग से चित्तशुद्ध होता है और परिणामतः वैराग्य प्राप्त होता है । परंतु भक्त की चित्तवृत्ति रामकृपा से ही शांत हो जाती है और यह मद-लोभ आदि दुर्गुणों से मुक्त रहकर समत्वभाव को प्राप्त करता है अतएव उन्हें योग के आश्रय की भी आवश्यकता नहीं है ।

नहिं रोग न लोभ न मान मदा ।
तिन्ह के सम बैभव वा बिपदा ।
येहि ते तब सेवक होत मुदा ।
मुनित्यागत जोग भरोस सदा [1]।

सब साधनों का एकमात्र फल भक्ति ।

तुलसी के मत से वेद में बताये हुए अनेक प्रकार के सत्कर्म, शास्त्र श्रवण तथा जप, तप, योग नियम आदि साधनों का एकमात्र फल है भक्ति।

जप तप नियम जोग निज धर्मा ।
श्रृतिसंभव नाना सुभ कर्मा ।
आगम निगम पुरान अनेका ।
पढ़े सुनेकर फल प्रभु एका ।
तव पद पंकज प्रीति निरंजर ।
सब साधन कर यह फल सुंदर [2]।

यज्ञयागादि, दान, व्रत, वैराग्य, विवेक इन सब साधनों का परिणाम है भगवान के चरणों में प्रेम । जिन्हें शास्त्रों ने, पुराणो ने भक्ति कहा है और इस भक्ति के बिना मनुष्य को कभी भी भीतरी कुशलता का अनुभव नहीं होता।

जप तप मख सम दम ब्रत दाना ।
बिरति बिबेक जोग बिग्याना ।
सब कर फल रघुपति पद प्रेमा ।
तेहि बिनु कोउ न पावई छेमा [3]।

---

१. रामचरित मानस ७/१४, २. ७/४९, ३. ७/९५

तीर्थयात्रा, ज्ञान, कुशलता, धर्माचरण, इन्द्रियनिग्रह, प्राणिमात्र पर दया, ब्राह्मण और गुरु की सेवा, विद्या, विनय आदि सभी साधनों का परिणाम स्वरुप जो सुंदर फल लगता है, इसे तुलसी भक्ति कहते हैं ।

तीर्थाटन साधन समुदाई ।
जोग बिराग ज्ञान निपुनाई ।
नाना कर्म धर्म ब्रत दाना ।
संजम दम जप तप मख नाना ।
भूतदया द्विज गुरु सेवकाई ।
विद्या बिनय बिबेक बड़ाई ।
जहँ लगि साधन बेद बखानी ।
सब कर फल हरि भगति भवानी [1]।

इस प्रकार सभी साधनों का फल एक मात्र भक्ति होने के कारण ही अत्रि जैसे समर्थ ऋषि भी श्रीराम के पास निष्काम भक्ति की ही याचना करते है । इतना ही नहीं परंतु गद्गदित भी हो जाते है ।

तन पुलक निर्भर प्रेम पूरन नयन मुख पंकज दिए ।
मन ग्यान गुन गोतीत प्रभु मैं दीख जप तप का किए ॥
जप जोग धर्म समूह ते नर भगति अनुपम पावई ।
रघुबीर चरित पुनीत निसि दिन दास तुलसी गावई [2]।

---

१. रामचरित मानस ७/१२६

२. उपरीवत् ३/६

भक्ति के आगे मुक्ति का भी त्याग

भक्ति का एसा अद्वितिय प्रभाव होने के कारण सरभंग जैसे संत तो अपने जपतपादि सारे साधनों को श्री राम के चरणों में समर्पित करके सायुज्य मुक्ति का भी त्याग कर देते हैं ।

अर्थात् ईश्वर में लीन न बनकर प्रभु के लोक वैकुंठ में जाते हैं और इस प्रकार भक्तों की भक्ति को देखकर बुद्धिमान लोग भक्ति के आगे मुक्ति का भी त्याग कर देते हैं ।

जोग जग्य जप तप ब्रत कीन्हा ।
प्रभु कहँ देह भगति बर लीन्हा ।
अस कहि जोग अगिनि तनु जारा ।
राम कृपाँ वैकुंठ सिधारा [१]।

तातें मुनि हरिलीन न भयऊ ।
प्रथमहि भेद भगति बर लयऊ [२]।

अस बिचारि हरि भगत सयाने ।
मुक्ति निरादर भगति लोभाने [३]।

भगवान श्री राम कागभुसुंडि को मोक्ष प्रदान करने को भी तैयार है और यथोच्छित वर मांगने को कहते हैं परंतु कागभुसुंडि केवल भक्ति की ही याचना करते हैं ।

कागभुसुंडि माँगु बर अति प्रसन्न मोहिं जानि ।
अनिमादिक सिधि अपर रिधि मोच्छ सकल सुख खानि ॥
ग्यान बिबेक बिरति बिग्याना ।
मुनि दुर्लभ गुन जे जग जाना ।
आजु देऊँ सब संसय नाहीं ।
माँगु जो तोहि भाव मनमांही [४]।

---

१. रामचरित मानस ३/८, २. ३/९, ३. ७/११९, ४. ७/८३-८४

तुलसी के अनुसार भक्ति के बिना सब प्रकार के सुख व्यर्थ है । जैसे कि नमक के बिना का भोजन ।

सुनि प्रभु बचन अधिक अनुरागेऊँ ।
मन अनुमान करन सब लागेउँ ।
प्रभु कह देन सकल सुख सही ।
भगति आपनी देन न कही ।
भगति हीन गुन सब सुख ऐसे ।
लवन बिना बहु ब्यंजन जैसे ।
भजन हीन सुख कहने काजा ।
अस बिचारी बोलेउँ खगराजा [1]।

भक्ति की एसी अप्रतिम महिमा के कारण ही कागभुसुंडि और गरुड जी जैसे भक्तों ने प्रभु के पास भक्ति का ही प्रसाद मांगा है कि श्रृति और पुराण जिसकी महिमा गाते हैं और योगी तथा ऋषि मुनि जिन्हें खोजते हैं ।

जो प्रभु होई प्रसन्न बर देहू ।
मोपर करहु कृपा अस नेहू ।
मन भावत बर माँगऊँ स्वामी ।
तुम उदार उर अंतरजामी ।

अबिरल भगति बिसुद्ध तब श्रृति पुरान जो गाव ।
जेहि खोजत जोगीस मुनि प्रभुप्रसाद कोउ पाव ॥
भगत कलपतरू प्रनतहित कृपासिंधु सुखधाम ।
सोई निज भगति मोहि प्रभु देहू दया करि राम [2]॥

---

१. रामचरित मानस ७/८३

२. उपरीवत् ७/८४

रामभक्ति विज्ञान से भी दुर्लभ ।

पार्वतीजी शिवजी से प्रश्न करती हुई कहती है कि धर्म, विरक्ति, सम्यक्ज्ञान, जिवनमुक्ति और ब्रह्मलीन विग्यानीयों को भी भक्ति दुर्लभ है, तो एसी भक्ति कागभुसुंडिने कैसे प्राप्त की ?

नर सहस्त्र महँ सुनहु पुरारी ।
कोउ इक होई धर्म व्रतधारी ।
धर्मसील कोटिक महँ कोई ।
बिषय बिमुख बिराग रत होई ।
कोटि बिरक्त मध्यश्रृति कहई ।
सम्यक ग्यान सकृत कोउ लहई ।
ग्यानवंत कोटिक महँ कोऊ ।
जीवनमुक्त सुकृत जग सोऊ ।
तिन सहस्त्र महँ सब सुखखानी ।
दुर्लभ ब्रह्मलीन बिग्यानी ।
धर्मसील बिरक्त अस ग्यानी ।
जीवनमुक्त ब्रह्म पर प्रानी ।
सब तें सो दुर्लभ सुरराया ।
राम भगति रत गत मद माया ।
सो हरि भगति काग किमि पाई ।
बिस्वनाथ मोहिं कहहु बुझाई [१]।

---

१. रामचरित मानस ७/५४

प्रभु का परमप्रिय पात्र-भक्त

पार्वतीजी के संशय के समाधान में शिवजी कागभुसुंडी की पूरी कथा सुनाते हुए हरि-भक्ति की प्राप्ति की कथा सुनाते हैं और इनमें भगवान रामने कागभुसुंडि को जो 'निज सिद्धांत' सुनाया वह अद्‌भुत है। निजसिद्धांत में श्रीराम कहते हैं कि वैसे तो सारे विश्व के जीव मुझे प्रिय है परंतु मनुष्य, द्विज, वेदमार्गी, धर्माचरण करनेवाला, वीरक्त, ज्ञानी, विज्ञानी आदि क्रमानुसार एक से एक अधिक प्रिय है। परंतु सबसे प्रिय कोई है तो वह है मेरा भक्त।

अब सुनु परम बिमल मम बानी।
सत्य सुगम निगमादि बखानी।
निज सिध्धांत सुनावउँ तोहीं।
सुनु मन धरु सब तजि भजु मोही।
मम माया संभव संसारा।
जीव चराचर बिबिध प्रकारा।
सब मम प्रिय सब मम उपजाए।
सबतें अधिक मनुज मोहिं भाए।
तिन्हँ महँ द्विज द्विजमहँ श्रुतिधारी।
तिन्ह महँ निगम धर्म अनुसारी।
तिन्ह महँ प्रिय बिरक्त पुनि ग्यानी।
ग्यानिहु ते प्रिय अति बिग्यानी।
तिन्ह ते पुनि मोहिं प्रिय निज दासा।
जोहि गति मोरि न दूसरि आसा [1]।

---

१. रामचरित मानस ७/८६

ज्ञान और भक्ति में भक्ति श्रेष्ठ ।

भवदुःख की मुक्ति के लिये ज्ञान और भक्ति दोनों का सामर्थ्य समान है । परंतु मानस में तुलसी ने श्रेष्ठ बताने का प्रयत्न किया है ।

भगतिहि ग्यानहिं नहिं कछु भेदा ।
उभय हरहिं भवसंभव खेदा [१]।

(क) ज्ञान मोक्ष का साधन है परंतु इसमें पतन की संभावना बनी रहती है – भक्ति के आश्रित मनुष्य का पतन कभी भी नहीं होता ।

जो ग्यान मान विमत तब भव हरिनि भक्ति न आदरी ।
ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी ।।
विस्वास करि सब आस परिहरि दास तब जे होइ रहे ।
जपि नाम तब बिनु श्रम तरहिं भव नाथ सो समराम है [२]।।

(ख) ज्ञानमार्ग कठीन और अनेकबाधाओं से युक्त है ।

ग्यान अगम प्रत्यूह अनेका ।
साधन कठीन न मन कहुँ टेका ।।[३]

करत कठीन सुमुझत कठिन साधन कठिन विवेक ।
होइ धुनाच्छार न्याय जौ पुनि प्रत्यूह अनेक [४]।।

(ग) ज्ञान वैराग्य आदि साधन है और भक्ति इन साधनों से प्राप्त होनेवाला फल है ।

ग्यान दया तम तीरथ मज्जन ।
जेहि लगि धर्म बहत श्रृति सज्जन ।।
तव पदपंकज प्रीति निरन्तर ।
सब साधन कर फल यह सुंदर [५]।

---

१. रामचरित मानस ७/११५, २. ७/१४, ३. ७/४५,
४. ७/११८, ५. ७/४९

(घ) ज्ञान वैराग्य आदि पुरुष वर्ग में आता है और भक्ति स्त्री वर्गमें अर्थात् पुरुष का स्त्री के प्रति अर्थात् माया के प्रति मोहित होना स्वाभाविक है परन्तु नारी नारी को मोहित नहीं कर सकती है अर्थात् माया भक्ति को प्रभावित नहीं कर सकती है । अर्थात् माया भक्त का अहित नहीं कर पाती ।

ज्ञान विराग जोग बिग्याना ।
ए सब पुरुष सुनहु हरि जाना ।
माया भगति सुनहु तुम्ह दोउ ।
नारि वर्ग जाने सब कोऊ ॥
पुनि रघुबीरहि भगति पिआरी ।
माया खलु नर्तकी बिचारी ।
भगतिहि सानुकूल रघुराया ।
ताते तेहि डरपति अति माया ।
राम भगति निरुपम निरुपाधि ।
बसइ जासु उस सदा अबाधि ।
तेहि बिलौकि माया सकुचाई ।
करिन संकइ कछु निज प्रभुताई ॥ ७/११५-११६

(च) जिस प्रकार थल के बिना जल नहीं रह सकता, उसी प्रकार ज्ञान से प्राप्त मोक्ष भक्ति के बिना नहीं रह सकता ।

जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई ।
केहि भाँति कोउ करइ उपाई ॥
तथा मोच्छ सुख सुनु खगराई ।
रहि न सकै हरिभर्गत बिहाई ॥

---

१. रामचरित मानस ७/११५-११६
२. उपरीवत् ७/११९

(छ) ज्ञानी भगवान का तरूण पुत्र है और भक्त शिशु पुत्र के समान है, शिशुपुत्र के किये जैसे माँ विशेष चिन्तित रहती है, ठीक उसी प्रकार भक्त के लिये भगवान हंमेशा चिंतित रहते है और रक्षा भी करते हैं ।

सुनु मुनितोहि कहउं सहरोसा ।
भजहि जे मोहि तजि सकल भरोसा ॥
करऊँ सदा तिन्ह के रखवारी ।
जिमि बालक राखइ महतारी ॥
गृह-सिसु बच्छ अनल अहि धाई ।
तहं राखइ जनती अरगाई ॥
प्रौढ़ भएं तेहि सुत पर माता ।
प्रीति करइ नहिं पाछिल बाता ॥
मोरे प्रौढ़ तनय सम ग्यानी ।
बालक सुत सम दास अमानी ॥
जानहि मोर बल निज बल ताही ।
दुहु कहं काम क्रोध रिपु आही ॥
यह बिचारि पंडित मोहि भजही ।
पाएहुँ ग्यान भगति नहिं तजहीं [1]॥

(छ) ज्ञान सब प्रकार के मानसे मुक्त होता है परंतु भक्त को सदैव एक गौरव (अभिमान) होता है कि मैं सेवक हूँ और प्रभु मेरे नाथ है ।

'ग्यान मान जहं एकउ नाही'[2]

अस अभिमान जाइ जनि मोरे ।
मैं सेवक रघुपति पति मोरे ॥[3]

---

१. रामचरित मानस ३/४२
२. उपरीवत् ३/१५
३. उपरीवत् ३/११

ज्ञान दीपक है और भक्ति मणि तुल्य है ।

तुलसी ने 'ज्ञान-दीपक' और 'भक्ति-मणि' के रुपक के द्वारा भक्ति की शक्ति को सर्वोत्कृष्ट साबित किया है । जिस प्रकार पवन के झोंके से दीपक बूझ सकता है वैसे ही इन्द्रियों को प्रिय एसे विषयों के बमंडर में कभी कभी ज्ञान दीपक को बूझ जाने की संभावना है अर्थात् अनेक कठीनाइयों को झेलने के बाद जो प्राप्त हुआ है एसा ज्ञान क्षणभर में मिट जाने की अर्थात् ज्ञानी का शीघ्र पतन होने की संभावना है ।

येहि बिधि लेसै दीप तेजरासि बिग्यानमय ।
जातहि जासु समीप, जरहिं मदादिक सलभ सब ।
तब सोई बुद्धि पाइ उँजियारा । उर गृहँ बैठि ग्रंथि निरवारा ।
छोटन ग्रंथि पान जौं सोई । रिद्धि सिद्धि प्रेरइ बहु भाई ।
बुद्धिहि लोभ दिखावहि आई ।
कल बल छल करि जाहि समीपा । अंचल बात जुझवहि दीपा ।
होई बुद्धि जौं परम समानी । तिन्ह तन चितव न अनहित जानी ।
जौं तेहि विधी बुद्धि नहिं बाधी । तौ बहोरि सुर करहिं उपाधी ।
इंद्री द्वार झरोखा नाना । तहँ तह बैठे सुर करि थाना ।
आवत देखहिं विषय बयारी । ते हठि देहिं कपाट उधारी ।
जब सो प्रभंजन उर गृहँ जाई । तबहि दीप बिग्यान बुझाई ।
ग्रंथि न छुटि मिटा सो प्रकासा । बुद्धि बिकल भइ विषय बतासा ।
इंद्रिन्ह सुरन्ह न ज्ञान सोहाई । विषय भोग पर प्रीति सदाई ।
विषय समीप बुद्धि कृत मोरी । तेहि बिधि टीप की बार बहोरी ।
तब फिरि जीव बिबिध बिधि, पावइ संसृति क्लेस ।
हरि माया अति दुस्तर, तरिन जाइ बिहँगेस [१]।

---

१. रामचरित मानस ७/११७-११८

तुलसी के मत से भक्ति चिंतामणी है अर्थात् चितवन करने पर तुरंत ही फल को देनेवाला और स्वयं प्रकाशित है। इस पर विषय-वासना के बमंडरों का कोई प्रभाव नहीं हो सकता अर्थात् भक्त कभी नष्ट नहीं होता है ।

राम भगति चिंतामनि सुंदर ।
बसइ गरुड़ जाके उर अंतर ।
परम प्रकासरुप दिन राती ।
नहिं कछु चहिअ दिआ धृत बानी ।
मोह दरिद्र निकट नहिं आवा ।
लोभ बात नहिं ताहि बुझावा ।
प्रबल अविद्या तम मिटि जाई ।
हारहिं सफल सलभ समुदाई ।
खल कामादि निकट नहिं जाहीं ।
बसइ भगति जाके उर माहीं ।
ब्यापहिं मानस रोग न भारी ।
जिन्ह के बस सब जीव दुखारी ।
राम भगति मनि उर बस जाकें ।
दु:ख लवलेस न सपने हुँ ताके [१]।

भक्ति सब साधनों में सब प्रकार से श्रेष्ठ और सर्वोपरी होने के कारण तुलसी का मन है कि संसार में वही मनुष्य चतुर है कि जो भक्ति-मणि की प्राप्ति के लिए यत्न करते हैं ।

चतुर सिरोमनि तेइ जग माहीं ।
जो मनि लागि सु जतन कराही [२]।

---

१. रामचरित मानस ७/१२०
२. उपरीवत्

भक्ति के बिना मोक्ष असंभव (भव से मुक्ति)

मानस के अनुसार भगवान की भक्ति के बिना जो मनुष्य मुक्ति चाहता है वह मनुष्य चाहे ज्ञानी भी हो परंतु वह पशु समान है अर्थात् मूढ है, अर्थात् भक्ति के बिना मोक्ष प्राप्ति असंभव है ।

रामचंद्र के भजन बिनु जो पद चह निर्बान ।
ग्यान वंत अपि सो नर पसु बिनु पूँछ बिषान [१]॥

रामभक्ति भवसिंधु में नैया समान

यत्पादप्लव मेक मेवहि भवामीम्भो......[२]

मानस के मंगलाचरण से ही तुलसीने भक्ति को संसार सागर से पार उतरे का श्रेष्ठ साधन बताया है । उपरांत और अन्य स्थानों पर भी इसी बात का प्रतिपादन किया है ।

भव सिंधु अगाध परे नर ते ।
पद पंकज प्रेम न जे करते [३]॥

---

१. रामचरित मानस ७/७८

२. बालकांड मंगलाचरण श्लोक ७

३. रामचरित मानस ७/१७

भक्ति क्लेशनाशक और सुखदायक

तुलसी के मत से केवल भक्ति से ही जीवन के सारे क्लेश मीट सकते हैं और शाश्वत सुख की प्राप्ति हो सकती है। सूर्य के बिना जैसे अंधकार से मुक्त होने का कोई उपाय नहीं, ठीक उसी प्रकार भक्ति के बिना जीवन का दुःख रुपी अंधकार भी की भी नहीं मिटता। जगत् की सारी असंभवित बातें संभवित हो जाये परंतु अभक्त का उद्धार संभव नहीं है।

राकापति षोडस अहिं तारागन समुदाइ ।
सकल गिरिन्ह दव लाइअ बिनु रबि राति न जाई ॥

एसे हि बिनु हरिभजन खगेसा ।
मिटइ न जीवन करे कलेसा [1]।

कमठ पीठि जामहिं बस बारा ।
बंध्यासुत बस काहुहि मारा ।
फूलहि नभ बस बहु बिधि कूल ।
जीव न लह सुख हरि प्रतिकूल ।
तृषा जाइ बस मृगजल पाना ।
बरु जामहिं सस सीस बिषाना ।
अंधकार बस रबिहि नसावैं ।
राम बिमुख नं जीव सुख पावै ।
हिम तें अनल प्रगट बस होई ।
बिमुख राम सुख पावन कोई ।

बारि मथें धृत होई, बस सिकता तें बरु तेल ।
बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिध्धांत अपेल [2]॥

---

१. रामचरित मानस ७/७८-७९

२. उपरीवत् ७/१२२

हरिभजन के बिना जीव को स्वप्न में भी सुख प्राप्त नहीं हो सकता। जबतक मनुष्य के हृदय में अनेक प्रकार के छल कपट और दुर्गुण बसते हैं तबतक प्रभु भक्ति का उदय नहीं होता। करोडों उपाय करने पर भी हरिभक्ति के बिना मोक्ष सुख की प्राप्ति नहीं होती।

तब लगि कुसल न जीव कहुँ सपनेहुँ नहिं बिश्राम।
जब लगि भजत न राम कहँ सोकधाम तजि काम॥

तब लगि हृदयँ बसत खल नाना।
लोभ मोह मच्छर मद माना॥
जब लगि उरन बसत रघुनाथा।
धरें चाप सायक कटि भाथा॥
ममता तरुन तमी अंधियारी।
रागद्वेष उलूक सुखकारी॥
तब लगि बसति जीव मन माहीं।
जब लगि प्रभु प्रताप रवि नाहीं[१]।

जिमि बिनु थल जल रहि न सकाई।
कोटि भाँति कोई करइ उपाई॥
तथा मोच्छ सुख सुनु खगराई।
रहिन सकई हरि भगति बिहाई[२]।

---

१. रामचरित मानस ५/४६-४७

२. उपरीवत् ७/११६

कलियुग में एकमात्र साधन-भक्ति ।

सतयुग में योगीलोग सद्गति के लिये ध्यान धरते थे, त्रेता में यज्ञ और द्वापर में पूजा, क्रियाकांड आदि । परंतु तुलसी के मत से कलियुग में केवल रामभक्ति और इसमें भी नाम-स्मरम भक्ति कल्याण के लिये श्रेष्ठ साधन है ।

कलियुग त्रेताँ द्वापर, पूजा मख अस जोग ।
जो गति होइ सो कलि, हरि नामते पावहिं लोग ॥

कृतजुग सब जोगी बिग्यानी । करि हरि ध्यान तरहिं भव प्रानी ।
त्रेता बिबिध जग्य नर करहीं । प्रभुहिं समर्पि कर्म भव तरहीं ।
द्वापर करि रघुपति पद पूजा । नर भव तरहिं उपाय न दूजा ।
कलियुग केवल हरिगुरु गाहा । गावत नर पावहिं भव थाहा ।
कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना । एक आधार रामगुन गाना ।
सब भरोस तजि जो भज रामहि । प्रेम सहित गाव गुनग्रामही ।
सोई भव तर कछु संशय नाहीं । नाम प्रताप प्रगट कलि माहीं ।
कलि कर एक पुनित प्रतापा । मानस पुन्य होहिं नहिं पापा ।

कलियुग सम जुग आन नहिं जो नर कर विस्वास ।
गाई रामगुन गन बिमल भव तर बिनहि प्रयास ॥[1] ७/१०२-१०३

येहि कलिकाल न साधन दूजा ।
जोग जग्य जप तप व्रत पूजा ।
रामहि सुमिरिअ गाईअ रामहि ।
संतत सुनिय राम गुनग्रामहि ।
जासु पतित पावन बड़ नामा ।
गावहिं कवि श्रृति संत पुराना ।
ताहि भजहिं मन तजि कुटिलाई ।
राम भजे गति केहि नहिं पाई [2]॥

---

१. रामचरित मानस ७/१०२-१०३
२. उपरीवत् ७/३०

मनुष्य देह की सार्थकता केवल भक्ति में ।

संत तुलसी मानव देह और मनुष्य जीवन की सार्थकता रामभक्ति करने में ही मानते हैं उनकी दृष्टि से जो मनुष्य अपना एक एक अंग और इन्द्रिय राम भक्ति में नहीं लगाता है वह अंग और इन्द्रियाँ निरर्थक है ।

जिन्ह हरिकथा सुनी नहिं काना ।
श्रवन रंघ्र अहिंभवन समाना ।
नयनन्हि संत दरस-नहिं देखा ।
लोचन मोरपंख सम लेखा ।
ते सिर कटु तुंबरि समतूला ।
जे न नमत हरि गुर पद मूला ।
जिन्ह हरि भगति हृदय नहिं आनी ।
जीवत सब समान तेह प्रानी ।
जो नहिं करइ राम गुन गाना ।
जीह सो दादुर जीह समाना ।
कुलीस कठोर निठुर सोइ छाती ।
सुनि हरिचरित न जो हरषाती [२]।

सो तनु धरि हरि भवहि न जे नर ।
तोहि विषयरत मंद मंदतर ।
काँच किरिच बदले ते लेही ।
कर ते डारी परसमनि देही [३]।

---

१. रामचरित मानस ७/३०

२. उपरीवत् १/११३

३. उपरीवत् ७/३०

माया से मुक्ति का एकमात्र साधन - रामकृपा ।

तुलसी के मत से माया राम की दासी है । माया जगत् के जीवों को नचाती है परंतु नटवर श्री राम के इशारों पर माया को नाचना पडता है । अतः माया से मुक्त होने के लिए रामभक्ति के द्वारा रामकृपा को प्राप्त करना पडता है ।

नाथ जीव तव मायाँ मोहा ।
सो निस्तरइ तुम्हारेहि छोहा [१]।
अतिसय प्रबल देव तव माया ।
छूटइ राम करहु जौं दाया [२]।
प्रभुमाया बलवंत भवानी ।
जाहि न मोह कवन अस ग्यानी ।

ग्यानी भगत सिरोमनि त्रिभुवनपति कर जान ।
ताहि मोह माया नर पाँवर करहि गुमान ॥
सिव बिरंचि कहँ मोहइ को है बपुरा आन ।
अस जियँ जानि भजहिं मुनि माया पति भगवान [३]।

सो दासी रघुबीर कै समुझें मिथ्या सोपि ।
छूट न राम कृपा बिनु नाथ कहउँ पन रोषि ॥
जो माया सब जगहि नचावा ।
जासु चरित लखि काहू न पावा ।
सोइ प्रभु भ्रू बिलास खगराजा ।
नाच नटी इव सहित समाजा [४]॥
नटकृत निपट कपट खगराया ।
नट सेवकहिं न ब्यापइ माया ।

हरि माया कृत दोष गुन बिनु हरि भजन न जाहिं ।
भजिअ राम तजि काम सब अस बिचारी मन माहिं [५]॥

---

१. रामचरित मानस ४/३, २. ४/२१, ३. ७/६२
४. ७/७१-७२, ५. ७/१०४

रामकृपा से दुर्लभ बातें भी सहज सुलभ ।

मोक्ष आदि समस्त सुख सामान्य व्यक्ति के लिए दुर्लभ है उपरांत ज्ञान, विज्ञान वैराग्य आदि गुण मुनिजनों के लिये प्राप्त करना भी कठीन है परंतु जो राम की कृपा हो जाए तो सब प्रकार की दुर्लभ चीजें और गुण तथा पुरुषार्थ भक्त को (कृपापात्र व्यक्ति को) सहज में प्राप्त हो जाते हैं । प्रभु प्रसन्न होने पर भक्ति को बिना माँगे ही सब दे देते हैं ।

जन कहुँ कछु अदेय नहिं मोरे ।
अस बिस्वास तबहु जनि भोरे [१]॥

कागभुसुंडि माँगु बर अति प्रसन्न मोहिं जानि ।
अनिमादिक सिधि अपर निधि रिधि सकल सुखखानी ॥
ग्यान बिबेक बिरति बिग्याना ।
मुनि दुर्लभ गुन जे जग जाना ।
आजु देउँ सब संसय नाहीं ।
माँगु जो तोहि भाव मनमाहीं [२]।

सुनु बिहंग प्रसाद अब मोरें ।
सब सुभ गुन बसिहहिं उर तोरे ।
भगति ज्ञान विज्ञान बिरागा ।
जोग चरित्र रहस्य बिभागा ।
जानब तैं सबही कर भेदा ।
मम प्रसाद नहिं साधन खेदा ।

माया संभव भ्रम सब अब न व्यापिहहुं तोहि ॥[3]

---

१. रामचरित मानस ३/४२

२. उपरीवत् ७/८४

३. उपरीवत् ७/८५

दुर्गुणों का शमन भी रामकृपा से

जिस प्रकार उपर हमने देखा की श्रीराम की प्रसन्नता से सभी सद्गुण स्वतः प्राप्त हो जाते है ठीक उसी प्रकार सभी दुर्गुणों को नष्ट करने के लिये भी रामकृपा आवश्यक है । परंतु एसी कृपा कोई विरले को ही प्राप्त होती है।

नारी नयन सर जाहि न लागा ।
घोर क्रोध तम निसि जो जागा ।
लोभ पास जेहि गर न बंधाया ।
सो नर तुम समान रघुराया ।
यह गुन साधन तें नहिं होई ।
तुम्हरी कृपा पाव कोई कोई [१]।

रामकृपा की प्राप्ति कैसे ?

उत्तरकांड में भक्त कागभुसुंडि के मत के अनुसार हरिभजन के बिना जीवन का क्लेश कभी भी नहीं मिट सकता है । और इस बात को जाने और समझे बिना प्रभु के प्रति प्रीति नहीं होती है और प्रीति के बिना भक्ति दृढ नहीं होती है ।

निर्मल हृदय सें प्रभु के भजन से राम प्रसन्न होते हैं ।
मन क्रम बचन छांडि चतुराई ।
भजन कृपा करिहहिं रघुराई [२]।

प्रेमपूर्वक रामभक्ति –

निज अनुभव मैं कहउँ खगेसा ।
बिनु हरि भजन न जाहिं क्लेसा ।
जाने बिनु न होइ परतीती ।
बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती ।
प्रीति बिना नहीं भगति दिढ़ाई ।
जिमि खगपति जल कै चिकनाई [३]।

---

१. रामचरित मानस ४/२१, २. १/२००, ३. ७/८९

तुलसी के मत से वेदों ने जो रघुनाथजी की भक्ति गाई है उस भक्ति को लाखों में कोई एक ही प्राप्त कर सकता है। भगवान राम केवल प्रेम से ही प्राप्त हो सकते हैं। भगवान केवल भक्ति के संबंध को ही मानते हैं। प्रभु शरणागत को प्रेम करते हैं। वह दिनबंधु और कोमल स्वभाव के हैं। अरण्यकांड में स्वयं राम कहते हैं कि केवल भक्ति ही मुझे जलदी से पिघला सकती है। निष्काम प्रेम भक्ति जप, जोग आदि से भी बढकर है। भगवान को सेवक सबसे ज्यादा प्रिय है। भक्तिहीन ब्रह्मा भी प्रभु को प्रिय नहीं है। परंतु अधमप्राणी भी यदि भक्तिवान हो तो वह प्रभु को प्राणप्रिय है।

सो रघुनाथ भगति श्रुति गाई। रामकृपाँ काहूँ एक पाई [१]।
रामहिं केवल प्रेम पिआरा। जानि लेहु जो जाननिहारा [२]।
कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानउ एकभगति कर नाता [३]।
गिरजा रघुपति कै यह रीती। संतत करहिं प्रनत पर प्रीती [४]।
जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीनबंधु अति मृदुला सुभाऊ [५]।
जातें बैगि द्रवउँ मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई [६]।
उमा जोग जप दान तप नाना मख व्रत नेम।
रामकृपा नहिं करहिं तसि जसि निष्केवल प्रेम।
जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीन बंधु अति मृदुल सुभाऊ।
जातें बैगि द्रवउँ मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई।
उमा जोग जप दान तप नाना मख व्रत नेम।
रामकृपा नहिं करहिं तसि जसि निष्केवल प्रेम [७]।
पुनि पुनि सत्य कहउँ तोहिं पाहीं। मोहिं सेवक सम प्रिय कोउ नाहीं।

भगति हीन बिरंचि किन होई। सब जीवहुं सम प्रिय मोहिं सोई।
भगतिवंत अति नीच प्रानी। मोहि प्रानप्रिय असि मम बानी [८]।

---

१. रामचरित मानस ७/१२६, २. २/१३७, ३. ३/३५, ४. ६/३
५. उपरीवत् ७/१, ६. ३/१६, ७. ६/११७, ८. ७/८६

भक्त के रक्षक श्री राम

भक्त के रक्षक स्वयं श्री राम है । प्रभु स्वयं के अपराध करनेवाले को क्षमा दे सकते है परंतु भक्त को सताने वालों को अवश्य दंड देते हैं । करुणानिधान श्रीराम भक्त के दुःख को सहन नहीं कर सकते हैं । सेवक कुछ भी भेदबुद्धि नहीं रखने पर भी भगवान भक्त की रुचि की रक्षा करते हैं ।

मायापति सेवक सन माया ।
करइ न उलटि परइ सुरराया ।
सुनु सुरेस रघुनाथ सुभाऊ ।
निज अपराध रिसाहिं न काऊ ।
जो अपराध भगत कर करई ।
राम रोष पावक सो जरई ।
लोकहुँ बेद बिदित इतिहासा ।
यह महिमा जानहिं दुरबासा ।

मनहुँ न आनिअ अमरपति रघुबर भगत अकाजु ।
अजसु लोक परलोक दुख दिन दिन सोच समाजु [१]।

जद्यपि सम नहिं राग न रोषू ।
गहहिं न पाप पुन्य गुन दोषू ।
करम प्रधान विस्व करि राखा ।
जो जस करइ सो तस कल चाखा ।
तदपि करहिं सम बिषम बिहारा ।
भगत अभगत हृदय अनुसारा ।
राम सदा सेवक रुचि राखी ।
बेद पुरान साधु सुर साखी [२]।

---

१. रामचरित मानस २/२१८

२. उपरीवत् २/२१९

भगवान सेवक की सेवा में सुख मानते हैं और सेवक से बैर करनेवाले को बैरी मानते हैं । प्रभु समदर्शी होने पर भी उन्हें सेवक विशेष प्रिय है । प्रभु को अपना सर्वस्व माननेवाले भक्त के लिए प्रभु सुध, पति, माता आदि बने रहते हैं । जो भक्त सबका भरोसा छोडकर अनन्य भाव से भगवान को भजता है ऐसे करते हैं कि जैसे माँ अपने नन्हे बालक की ।

मानत सुख सेवक सेवकाई ।
सेवक बैर बैरु अधिकाई [१]।

समदरसी मोहिं कह सब कोऊ ।
सेवक प्रिय अनन्य गति सोऊ [२]।

सबके प्रिय सेवक वह नीति ।
मोरें अधिक दास पर प्रीति [३]।।

सेवक सुत पति मातु भरोसे ।
रहै असोच बनै प्रभु पोसे [४]।

सुनि मुनि तोहि कहउँ सह रोसा ।
भजहिं जे मोहि तज सफल भरोसा ।
करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी ।
जिमि बालक राखई महतारी ।
गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई ।
तहँ राखइ जननी अरगाई [५]।

---

१. रामचरित मानस २/२१९
२. उपरीवत् ४/३
३. उपरीवत् ७/१६
४. उपरीवत् ४/३
५. उपरीवत् ३/४३

वैसे तो प्रभु को सभी लोकप्रिय हैं परंतु अपना भक्त विशेष प्रिय है। इस बात को स्पष्ट करते हुए तुलसी ने एक पिता के विविध गुणवाले पुत्रों का और आज्ञांकित पुत्र का उदाहरण देकर यथार्थ रुप से समझाने का प्रयत्न किया है।

एक पिता के बिपुल कुमारा ।
होहिं पृथक गुन सील अचारा ।
कोउ पंडित कोउ तापस ग्याता ।
कोउ धनवंत सूर कोउ दाता ।
कोउ सर्वज्ञ धर्मरत कोई ।
सब पर पितहि प्रीति सम होई ।
कोउ पितु भगत बचन मन कर्मा ।
सपनेहुँ जान न दूसर धर्मा ।
सो सुत प्रिय पितु प्रान समाना ।
जद्यपि सो सब भांति अमाना ।
येहि बिधि जीव चराचर जेते ।
त्रिजग देवनर असुर समेते ।
अखिल बिस्व यह मोर उपाया ।
सब पर मोहिं बराबर दाया ।
तिन्हँ महँ जो परिहरि मद माया ।
भजइ मोहिं मन बच अस काया ।

सत्व कहौं खग तोहिं सुचि सेवक मम प्रान प्रिय ।
अस बिचारि भजु मोहिं परिहरि आस भरोस सब । ७/८७

१. रामचरित मानस ७/८७

गर्वगंजन करनेवाले श्रीराम

उपर हमने देख लिया कि राम को भक्त सर्वथा प्रिय है और भक्त की रक्षा भगवान शिशु की भांति करते हैं, परंतु भक्त के मन में गर्व हो जाय तो भगवान तो गर्वगंजन है । शिशु का अकल्याण होता हुआ भला माँ कैसे देख पाएगि ? भगवान भक्त के क्रोध और शाप को सहन करके भी अपने भक्त की रक्षा करते हैं । तुलसी ने नारद-शाप प्रसंग में इस सिद्धांत की स्पष्टता की है और उत्तरकांड में भी यही विधान स्पष्ट हुआ है ।

नारद कहेउ सहित अभिमाना । कृपा तुम्हारि सकल भगवाना ।
करुनानिधि मन दीख बिचारी । उर अंकुरेउ गरब तरु भारी ।
बैगि सो मैं डारिहउँ उखारी । पन हमार सेवक हितकारी ।
मुनिकर हित मम कौतुक होई । अवसि उपाय करबि मैं सोई ।
श्रीपति निजमाया तव प्रेरी । सुनहु कठिन करनी तेहि केरी [१]।

तातें उमा न मैं समूझावा । रघुपति कृपा मरमु मैं पावा ।
होहहि कीन्ह कबहुँ अभिमाना । सो खोवैचह कृपा निधाना [२]।

सुनहु रामकर सहज सुभाउ । जन अभिमान न राखहि काऊ ।
संसृति मूल सुलप्रद नाना । सकल लोक दायक अभिमाना ।
ताते करहिं कृपानिधि पूरी । सेवक पर ममता अति भूरी ।
जिमि सिसु तन ब्रन होई गोसाई । मात-चिराव कठीन की नाई ।
जदपि प्रथम दुख पावइ रोवइ बाल अधीर ।
ब्याधि नास हित जननी गनति न सो सिसु पीर ॥
तिमि रघुपति निज दासकर करहिं मान हित लागि ।
तुलसीदास एसे प्रभुहि कस न भजहु भ्रम त्यागि [३]॥

---

१. रामचरित मानस १/१२९

२. उपरीवत् ७/६२

३. उपरीवत् ७/७४

शरणागत रक्षक श्रीराम ।

श्रीराम का स्वभाव है कि वे भक्त की तो रक्षा करते ही है परंतु यदि घोर पापी भी श्रीराम के शरण में जाये तो प्रभु उसका भी त्याग नहीं करते हैं । विभीषण का आगमन और उस वक्त श्री राम-सुग्रीव संवाद और विभिषण का स्वीकार इस प्रसंग में श्रीराम का शरणागत रक्षण धर्म का अति मार्मिक और सुंदर वर्णन है ।

सखा निति तुम्ह नीक बिचारी ।
मम पन सरनागत भय हारी.... ।

सरनागत कहुँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि ।
तेनर पामर पापमय तिन्हहि बिलोकत हानि ॥

कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू ।
आएँ सरन तजौं नहिं ताहू [१]॥

बिस्व द्रोह कृत अध जेहि लागा ।
सरन गएँ प्रभु ताहु न त्यागा [२]।

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं ।
जनम कोटि अध नासहिं तबहीं ।
पापवंत कर सहज सुभाऊ ।
भजनु मोरि तेहि भाव न काऊ ।
जो पै दुष्ट हृदय सो होई ।
मोरे सनमुख आव कि सोई [३]।

---

१. रामचरित मानस ५/४३-४४

२. उपरीवत् ५/३९

३. उपरीवत् ५/४४

इस विषय में श्रीराम स्वयं विभिषण से चर्चा करते हुए कहते हैं कि सचराचर का द्रोह करनेवाला भी यदी मेरी शरण में आता है तो मैं उसे अभय प्रदान करता हुं और घर-बार, परिवार और सुखवैभव की ममता छोड़कर जो भक्त अपने मन को मेरे चरण में बांध देता है एसे भक्त जैसे लोभी को धन प्रिय लगता है ठीक वैसे ही मुझे प्रिय लगता है और ऐसे भक्तों के कारण ही मे देहधारण करता हूँ ।

सुनहु सखा निज कहउँ सुभाऊ ।
जान भुसुंडि संभु गिरिजाऊ ।
जौ नर होइ चराचर द्रोही ।
आवै सभय सरन तकि मोही ।
तजि मद मोह कपट छल नाना ।
करौं सद्यातेहि साधु समाना ।
जननी जनक बंधु सुत दारा ।
तनु धनु भवनु सुहृद परिवारा ।
सबकी ममता ताग बटोरी ।
मम पद मनहिं बाँध बरि डोरी ।
समदरसी इच्छा कछु नाहीं ।
हरष सोक भय नहिं मन माहीं ।
अस सज्जन मम उर बस कैसे ।
लोभी हृदयँ वसइ धनु जैसे ।
तुम्ह सरिखे संत प्रिय मोरें ।
धरौं देह नहिं आन निहोरे । ४/४८

आवत देखि सक्ति अति घोरा ।
प्रनतारति भंजन पन मोरा ।
तुरत बिभीषण पाछे मेला ।
सन्मुख राम सहेउ सोई सेला ।
लागि सक्ति मुरुछा कछु भई ।
प्रभु कृत खेल सुरन्ह बिकलई । ६/९४

इस प्रकार भगवान सब अवसरों पर शरणागत की रक्षा करते हैं ।

---

१. रामचरित मानस ४/४८, २. ६/९४

न मे भक्त प्रणश्यति

दुनिया में जीव की दुर्गति और विनाश का कारण है अविद्या । परंतु प्रभु कृपा से भक्त को अविद्या व्याप ही नहीं सकती और अविद्याग्रस्त न होने से भक्त का अकल्याण भी कभी नहीं होता और दीन ब दीन भक्ति ही बढती रहती है और विद्या का विकास होता है ।

हरि सेवकहि न ब्याप अविद्या ।
प्रभु प्रेरित व्यापई तेहि विद्या ।
ताते नाश न होई दास कर ।
भेद भगति बाढइ बिहंगवर [1]।

भक्ति के साधन

इसके पूर्व हमने रामभक्ति की महिमा, उसका प्रभाव, उसका फल, श्री रामकृपा और श्रीराम का स्वभाव इन सारी बातों को तुलसी के मत से देखा । परंतु इस भक्ति को प्राप्त करने के लिये कौन कौन से साधन है ? तुलसी ने रामभक्ति के लिये अनेक साधन बताये है -

१) तुलसी के मत से चरित श्रवण से भक्ति की प्राप्ति -
रघुपति भगति प्रेम परमिति सी ।[2]
जननि जनक सिय राम प्रेम के ।[3]

२) कागभुसुंडि के मत से रामकथा रूपी खान से भक्तिमणि की प्राप्ति ।
पावन पर्वत बेद पुराना ।
रामकथा रुचिराकर नाना ।
मर्मी सज्जन सुमति कुदारी ।
ग्यान बिराग सुमति कुदारी ।
ग्यान बिराग नयन उरगारी ।
भाव सहित खोजै जो प्रानी ।
पाव भगति मनि सब सुख खानी [4]।

१. रामचरित मानस ७/७९, २. १/३१, ३. १/३२, ४. ७/१२०

कथा श्रवण से भक्ति की प्राप्ति होती है ।

३) शिवजी के मत से भी कथा श्रवण से –

प्रनत कल्पतरु करुनापुंजा । उपजई प्रीति राम पद कंजा ।
मन क्रम बचन जनित अध जाई । सुनहिं जे कथा श्रवन मन लाई [१]।

४) वेदों के सब साधनों का फल केवल कथाश्रवण से –

जहँ लगि साधन बेद बखानी । सब कर फल हरि भगति भवानी ।
सो रघुनाथ भगति श्रुति गाई । रामकृपा काहू एक पाई ।

मुनि दुर्लभ हरि भगति नर पावहिं बिनहिं प्रयास ।
जे यह कथा निरंतर सुनहिं मानि बिस्वास [२]।।

५) श्रीराम के मत से भक्ति के साधन –

भगति के साधन कहउँ बखानी ।
सुगम पंथ मोहि पावहिं प्रानी ।
प्रथमहिं बिप्र चरन अति प्रीती ।
निज निज कर्म निरत श्रुति रीती ।
संत चरन पंकज अति प्रेमा ।
मन क्रम बचन भजन दृढ़ नेमा ।
गुरु पितु मातु बंधु पति देवा ।
सब मोहि कहँ जाने दृढ़ सेवा ।
मम गुन गावत पुलक शरीरा ।
गद्‌गद गिरा नयन बह नीरा ।
काम आदि मद दंभ न जाकें ।
तात निरंतर जस मैं ताके ।

बचन कर्म मन मोरि गति भजनु करहिं निष्काम ।
तिन्ह के हृदय कमल महुँ करउँ सदा बिश्राम [३]।

१-२ रामचरित मानस ७/१२६

३. उपरीवत् ३/१६

रामकथा का प्रभाव

रामकथा से भक्ति तो प्राप्त होती ही है परंतु साथ साथ ज्ञान-वैराग्य भी प्राप्त होते है इस प्रकार वह मोह-नदी पार उतरने की सुंदर नौका है । वह भवदुःख को नाश करनेवाली, संजीवनी के समान है इसलिए रामभक्त को इस कथा के समान और कोई वस्तु प्रिय नहीं होती है ।

बिरति बिबेक भगति दृढ़ करनी ।
मोह नदी कहँ सुंदर तरनी ।[१]

रामकथा गिरिजा मैं बरनी ।
कलिमल समनि मनोमल हरनी ।
संसृति रोग सजीवन मूरी ।
रामकथा गावहिं श्रुति सूरी ।[२]

कहेऊँ परम पुनीत इतिहासा ।
सुनत श्रवन छूटिहिं भव पासा ।
यह सुभ संभु उमा संवादा ।
सुख संपादन समन बिषादा ।
भवभंजन गंजन संदेहा ।
जनरंजन सज्जनप्रिय येहा ।[३]

पुण्यं पापहरं सदा शिव करं विज्ञानभक्तिप्रदं ।
मायामोहमलापहुं सुविमलं प्रेमांबुपूरं शुभं ॥
श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहंति ये ।
ते संसारपतंगघोरफिरणैर्दह्यन्ति तो मानवाः [४]॥

राम उपासक जे जग माहीं ।
येहि सम प्रिय तिन्ह के कछु नाहीं [५]।

---

१. रामचरित मानस ७/१५, २. ७/१२९, ३. ७/३०
४. उपरीवत् ७ - समाप्ति, ५. ७/१३०

रामभक्ति की चौदह भूमिकाएँ ।

रामचरित मानस के अयोध्याकांड में राम वाल्मिकी सेवा में रामभक्ति की चौदह भूमिकाओं का वर्णन है जिसे एक एक करके स्पष्ट करेंगे ।

१) कथा श्रवण सक्ति ।

सुनहु राम अब कहौं निकेता ।
जहाँ बसहु सिय लखन समेता ।
जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना ।
कथा तुम्हारि सुभग असरिनाना ।
भरहिं निरंतर होहिं न पूरे ।
तिन्ह के हिय तुम कहुँ गृह रुरे [१]।

अरण्यकांड में इसी बात का समर्थन कते हुए श्री राम लक्ष्मण को भक्ति-योग का निरुपण करते हुए कहते हैं -

श्रवणादिक नव भक्ति दृढ़ाही ।
मम लीला रति अति मन माहीं [२]।

कथाश्रवण लाभ सत्संग के बिना प्राप्त नहीं होता है, इस लिये संतसमागम और सत्संग पर तुलसी ने बार बार ज़ोर दिया है ।

प्रथम भगति संतन्ह कर संगा ।
दूसरी रति मम कथा प्रसंगा [३]।

बिनु सतसंग न हरिकथा तेहि बिनु मोह न भाग ।
मोह गये बिनु राम पद होहिं न दृढ़ अनुराग [४]।

अति हरि कृपा जाहि पर होई ।
पाउँ देइ येहिं मारग सोई [५]।

---

१. रामचरित मानस २/१२८, २. ३/१६, ३. ३/३५
४. उपरीवत् ७/६१, ५. ७/१२९

तुलसी संत समाज को जंगम तीर्थराज कहते हैं और वह जंगम प्रयाग में हरिहर की कथा का प्रवाह बढ़ रहा है उसे विश्व का मंगल करनेवाला कहते हैं, उपरांत रामकथा और संतो का संबंध मानस में स्थान स्थान पर जोड़कर सिद्ध करते हैं कि संत और सतसंग को विलग नहीं किया जा सकता अर्थात् संत के समागम से सत्संग लाभ होता है, सत्संग लाभ में कथा श्रवण का लाभ होता है और कथा संस्था का नाश करती है । और संशय तथा मोहनाश के बिना रामचरण में प्रेम नहीं होता है ।

मुद मंगलमय संत समाजुं । जो जग संगम तिरथ राजु ।
हरिहर कथा बिराजत बेनी । सुनत सकल मुद मंगल देनी [१]।

सुजन सजीवन मूरि सुहाई ।.....
संत समाज पयोधि रमा सी ।.....
संतसुमति तिय सुभग सिंगास ।.....

राम चरित राकेस कर सरिस सुखद सब काहू ।
सज्जन कुमुद चकोर चित हित बिसेषि वड़ लाहु [२]॥

अवलंब भवंत कथा जिन्हकें ।
प्रिय संत अनंत सदा तिन्हकें [३]।
तबहि होई सब संसय भंगा ।
जब बहु काल करिअ सतसंगा ।
सुनिअ तहाँ हरिकथा सुहाई ।
नाना भाँति मुनिन्ह जो गाई ।
जेहि महुँ आदि मध्य अवसाना ।
प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना ।
नित हरि कथा होत जहँ भाई ।
पठवौं तहाँ सुनहु तुम्ह जाई ।
जाइहि सुनत सकल संदेहा ।
रामचरन होइहि अति नेहा [४]।

---

१. रामचरित मानस १/२, २. १/३१-३२, ३. ७/१४, ४. ७/६१

तुलसी संत को शिव और विष्णु के समान मानते हैं । संत निंदा का विरोध करते हैं । संत की तुलना अनंत के समान करते हैं । वेद और सरस्वति भी संत की स्तुति करने में असमर्थ है - ऐसा बताते हुए ब्रह्मा-विष्णु महेश को भी संतवर्णन करने में क्षोभ होने का दावा करते हैं । संतभक्ति को रामभक्ति के लक्षणों में प्रमुख स्थान देते हैं तथा नवधाभक्ति में प्रथम । और कहीं कहीं तो राम से भी अधिक -

संत प्रभु श्रीपति अपवादा ।
सुनिअ जहाँ तहँ असि मरजादा ।
काटिअ तासु जीभ जो बसाई ।
श्रवन मूंदि नत चलिअ पराई [१]।

जानेसु संत अनंत समाना [२]।

प्रिय संत अनंत सदा तिन्हकें [३]।

मुनि सुनु साधुन्ह के गुन जेते ।
कहि न सकहु श्रृति सारद तेते [४]।

विधि हरि हर कबि कोबिद बानी ।
कहत साधु महिमा सकुचानी [५]।

संत चरण पंकज अतिप्रेमा [६]।

प्रथम भगति संतन्ह कर संगा [७]।

मोरे मन प्रभु अस बिस्वासा ।
राम तें अधिक राम कर दासा [८]।

---

१. रामचरित मानस १/६४, २. ७/१०९, ३. ७/१४, ४. ३/४६

५. उपरीवत् १/३, ६. ३/१६, ७. ३/३५, ८. ७/१२०

संतो के लक्षण

मानस में अनेक स्थानों पर संत के लक्षणों का वर्णन मिलता है । परहित की भावना, समान बुद्धि, लोकमंगल की कामना, निःस्वार्थभाव, अपकार पर भी उपकार, परोपकारिता आदि को संत स्वभाव बताया गया है ।

बंदौ संत समान चित हित अनहित नहिं कोई ।
अंजली गत सुभ सुमन जिमि सम सुगंध कर दोइ [१]।

संत सरलचित जगत हित जानिसुभाउ सनेहु ।[२]
हेतु रहित परहित रत सीला ।[३]
श्रद्धा समा ममत्री दाया ।[४]
सीतलता सरलता मयत्री ।[५]
उमा संत कइ इहइ बडाई ।
मंद करत जो करहिं भलाई ।[६]
सममानि निरादर आदर ही । सब संत सुखी बिचरंति मही ।[७]
निंदा अस्तुति उभय सम, ममता मम पद कंज ।[८]
काटइ परसु मलय सुनु भाई ।
निज गुन देइ सुगंधि वसाई ।[९]
पर दुःख दुःख सुख सुख देखे पर ।[१०]
सम अभूत रिपु.... ।[११]
पर उपकार बचन मन काया ।
संत सहज सुभाउ खगराया ।
संत सहहिं दुख परहित लागी ।[१२]
भूर्ज तरु सम संत कृपाल ।
परहित निति बिपति बिसाला ।[१३]

१-२ रामचरित मानस १/३, ३-४. ३/४६, ५. ७/३८, ६. ५/४१, ७. ७/१४,
८. उपरीवत् ७/३८, ९. ७/३७, १०-११. ७/३८, १२-१३. ७/१२१

जीवमात्र के प्रति प्रेम, परहित के लिए नित्य सहिष्णु और दृढ़ रामभक्ति आदि संत के प्रमुख लक्षण हैं ।

संत हृदय नवनीत समान ।
कहाकाबिन्ह परि कहइ न जाना ।
निज परितपा द्रवइ नवनीता ।
पर दुःख द्रवहिं संत सुपुनीता [1]।
मुदमंगलमय संत समाजू ।
जो जग जंगम तीरथराजू ।
रामभक्ति जहं सुरसरि धारा [2]।
तजि मम चरन सरोजप्रिय तिन्ह कहुँ देह न गेहु ।[3]
गावही सुनही सदा मम लीला [4]।
मन वच क्रम मम भगत अपाया [5]।
.... ममता मम पद कंज [6]।
बिगत काम मम नाम परायण [7]।
सब के प्रिय सबके हितकारी ।
दुःख सुख सरिस प्रसंसा गारी [8]।
सगुन उपासक परहित निरत नीति दृढ नेम ।[9]
बैर न विग्रह आस न त्रासा ।
सुखमय ताहि सदा सब आसा [10]।
राम भगत परहित निरत परदुःख दुःखी दयालु [11]।
सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत ।
मैं सेवक सचराचर रुप स्वामी भगवंत [12]।।
जड चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार ।

जड़ चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार ।
संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार [13]।।

---

१. रामचरित मानस ७/१२५, २. १/२, ३. ३/४५, ४. ३/४६, ५-६-७. ७/३८,
८. उपरीवत् २/१३०, ९. ५/४८, १०. ७/४६, ११. २/२१९, १२. ४/३ १३. १/६

संतों के अनुकूल होने पर ही भक्ति की प्राप्ति ।

तुलसी के मत से रामकृपा की भांती ही संतकृपा भी भक्तिमार्ग में अत्यंत सहायक है । संतोंने ही ब्रह्मवारिधि का मंथन करते कथामृत को प्राप्त किया है । और इस कथामृत की मधुरता है भक्ति । सत्संग के बीना भक्ति की प्राप्ति नहीं होती और सत्संग का आरंभ ही संस्कृति के अंत का आरंभ है ।

भगति तात अनुपम सुख मूला ।
मिलई जो संत होहिं अनुकूला [1]।

राम सिंधु घन सज्जन धीरा ।
चंदन तरु हरि संत समीरा ।
सब कर फल हरि भगति सुहाई ।
सो बिनु संत न काहूँ पाई ।
अस बिचारि जोइ कर सतसंगा ।
राम भगति तेहि सुलभ बिहंगा ।

ब्रह्म पयोनिधि मंदर ग्यान संत सुर आहिं ।
कथा सुधा मथि काढ़हिं मधुरता जाहि [2]।

भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानि ।
बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी ।
पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न संता ।
सतसंगति संसृति कर अंता [3]।

---

१. रामचरित मानस ३/१६

२. उपरीवत् ७/१२०

३. उपरीवत् ७/४५

सत्संग समस्त सुख का मूल और सब साधनों का फल है । सत्संग के सुख के साथ स्वर्ग और मोक्ष सुख की भी तुलना नहीं हो सकती । शिवजी जैसे समर्थ भी रामभक्ति के साथ साथ सत्संग की याचना करते हैं । ऐसा दुर्लभ और बहुमूल्य सत्संग रामकृपा के बिना प्राप्त नहीं होता है । अनेक जन्मों के पुण्योदय से ही सत्संग की प्राप्ति होती है ।

बडे भाग पाइअ सतसंगा ।
बिनहि प्रयास होइ भवभंगा [१]।
सतसंगति मुद मंगल मूला ।
सोई फल सिधि सब साधन फूला [२]।
संत मिलन रुप सुख जग नाहीं [३]।
तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग ।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग [४]।।
बार बार बार माँगउँ हरषि देहु श्री रंग ।
पद सरोज अनपायनी भगति सदा सतसंग [५]।।
बिनु सतसंग बिबेक न होई ।
रामकृपा बिनु सुलभ न सोई [६]।
अब मोहिं भा भरोस हनुमंता ।
बिनु हरिकृपा मिलहिं नहिं संता [७]।
निगमागम पुरान मत येहा ।
कहहिं सिद्ध मुनि नहिं संदेहा ।
संत बिसुद्ध मिलहिं पै तेही ।
चितवहिं राम कृपा करि जेही [८]।
गिरजा संत समागम सम न लाभ कछु आन ।
बिनु हरि कृपा न होइ सो गावहिं बेद पुरान [९]।
पुण्य पुंज बिनु मिलहि न संता [१०]।

---

१. रामचरित मानस ७/३३, २. १/३, ३. ७/१२१, ४. ५/४, ५. ७/१४
६. उपरीवत् १/३, ७. ५/७, ८. ७/६९, ९. ७/१२५, १०. ७/४५

इस भक्ति मार्ग में गुरुभक्ति भी सहायक ।

गुरुकृपा से मोह का नाश होता है, ज्ञानोदय होता है, जिससे रामचरित्र के रहस्यों का उद्घाटन होता है । मानस में तुलसी समर्थ गुरु के चरण नख को मणि की, चरणरज को अमीमयचूर्ण की और गुरु को सूर्य आदि की उपमा देकर समझाने का प्रयत्न करते हैं कि ब्रह्म या शिव जैसे भी मार्गदर्शक के बिना भवसागर पार नहीं कर सकते है ।

श्री गुरु पद नख मनिगन जोती ।
सुमिरत दिव्य दृष्टि हियँ होती ।
दलन मोह तम सो सप्रकासू ।
बड़े भाग उर आवइ जासू ।
उधरहिं बिमल बिलोचन ही के ।
मिटहिं दोष दुख भव रजनी के ।
सूझहिं राम चरित मनि मानिक ।
गुपुत प्रकट जहँ जो जेहि खानिक ।
जथा सुअंजन अंजि दृग साधक सिद्ध सुजान ।
कौतुक देखत सैल बन भूतल भूरि निधान [१]।

बदउँ गुरु पद कंज कृपासिंधु नररूप हरि ।
महामोह तम पुंज जासु बचन रबिकर निकर [२]।
अमिअ मूरिमय चूरन चारु ।
समन सकल भवरुज परिवारु [३]।

भूमि जीव संकुल रहे गए सरद रितु पाई ।
सद गुरु मिलें जाहिं जिमि संसय भ्रम समुदाई [४]।

गुरु बिनु भवनिधि तरइ न कोई ।
जौं बिरंचि संकर सम होई [५]।

१-२-३. रामचरित मानस १/१, ४. ४/१७, ५. ७/९३

संत हृदय तुलसी ने इष्ट से भी गुरु का स्थान ज्यादा महत्वपूर्ण बताकर भक्ति की चौदह भूमिकाओं के अंतर्गत तथा नवधा भक्ति में स्थान देकर गुरुमहिमा समझाने का प्रयत्न किया है ।

तुम्ह तें अधिक गुरहि जियँ जानी ।
सकल भायँ सेवहिं सनमानी ।
सब कर माँगहि एक फल रामचरन रति होउ ।
तिन्ह के मन मंदिर बसहु सिय रघुनंदन दोउ [१]॥
गुरु पद पंकज सेवा तीसरी भगति अमान [२]।

भक्ति के प्रादुर्भाव में नाम-स्मरण समर्थ साधन ।

तुलसी ने मानस में नाम-स्मरण पर सविशेष बल दिया हैं । मानस के प्रारंभ से ही अनेक युक्ति - प्रयुक्तियों से नाम-स्मरण का महत्व प्रकट किया हैं । इस बातों में तुलसी का नाम-स्मरण के प्रति अति अनुराग सहज रुप से प्रकट हो जाता हैं । आरंभ का पूरा प्रकरण ही मानों नाम स्मरण का हैं। तुलसी के मत से राम नाम सगुण और निर्गुण दोनों से बढ़कर है । तुलसी के नाम-स्मरण विषयक विचारों को हम यहाँ देखेंगे ।

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरुपा । अकथ अगाध अनादि अनूपा ।
मोरें मत बड़ ना दुहूँ तें । किया जेहि जुग निज बस बूते ।
प्रोढ़ि सुजन जनि जानहिं जन की । करौं प्रतीति प्रीति रुचि मन की ।
एक दासगत देखिअ एकू । पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू ।
उभय अगम जुग सुगम नाम तें । कहौं नाम बड़ ब्रह्म राम तें [३]।

व्यापक एक ब्रह्म अविनाशी । सत चेतन धन आनंद रासी ।
अस प्रभु हृदयँ अछत अबिकारी । सकल जीव जग दीन दुखारी ।
नाम निरुपन नाम जतन तें । सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन तें [४]।

---

१. रामचरित मानस २/१२९, २. ३/३५
३. उपरीवत् १/१९, ४. १/२३

राम नाम से कंइ दीनजन तैर गये हैं । इस नाम से मोहादि दुर्गुणों के दल को भक्त सहज जीत सकता हैं । शोकमुक्त हो जाता है । इस प्रकार तुलसी ने रामनाम की महिमा विविध रुपकों में गाई है । जो निम्न चोपाईयों के आधार पर है ।

राम सुकंठ बिभीषन दोऊ । राखे सरन जान सब कोऊ ।
नाम गरीब अनेक निवाजे । लोक बंद बर बिरद बिराजे ।
राम भालुकपि कटक बहोरा । सेतु हेतु श्रम कीन्ह न थोरा ।
नाथ लेन भव सिंधु सुखाहीं । करहु बिचार सुजन मन माँही ।
राम सकुल रन रावन मारा । सीय सहित निज पुर पगु धारा ।
राजा राम अवध रजधानी । गावत गुन सुरमुनि बर जानी ।
सेवक सुमिरत नाम सप्रीती । बिनु श्रम प्रबल मोह दल जीती ।
फिरत सनेह मगन सुख अपने । नाम प्रसाद सोच नहिं सपने [१]।
बरषा रितु रघुपति तुलसी सालि सुदास ।
राम नाम बर बरन जुग सावन भादव मास [२]॥
कहत सुनत सुमिरत सुढि नीके । राम लखन सम प्रिय तुलसी के [३]।
भगति सुतिय कल करन बिभूषन [४]।
देखिअहिं रुप नाम आधीना । रुप ग्यान नहिं नाम बिहीना ।
रुप बिसेष नाम बिनु जानें । करतल गत न परहिं पहिचानें ।
सुमिरिअ नाम रुप बिनु देखे । आवत हृदय सनेह बिसेषे [५]।
नाम जीहँ जपि जागहिं जोगी । बिरति बिरंचि प्रपंच बियोगी ।
ब्रह्म सुखहिं अनुभवहिं अनूपा । अकथ अनामय नाम न रुपा ।
जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ । नाम जीहँ जपि जानहिं तेऊ ।
साधक नाम जपहिं लय लाएं । होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएँ ।
जपहि नामु जन आरत भारी । मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी ।
रामभगत जग चारि प्रकारा । सुकृती चारिउ अनध उदारा ।
चहुँ चतुर कहुँ नाम अधारा । ज्ञानी प्रभुहि बिसेष पिआरा ।....
सकल कामना हीन जे राम भगति रस लीन ।
नाम सुप्रेम पियूष हृद तिन्हहुँ किए मन मीन [६]॥

---

१. रामचरित मानस १/२४-२५, २. १/१९, ३-४. १/२०, ५. १/२१, ६.१/२२

कलि काल में नाम स्मरण अन्य सभी आध्यात्मिक साधनों में अधिक प्रभावशाली हैं । शिवजी ने भी रामनाम महामंत्र का उपदेश दिया हैं । इस नाम को लेकर काशी में देहत्याग करनेवाले को परम शांति और सुख मिलता हैं । नाम स्मरण भवसागर को पार उतरने का सेतु समान हैं । इस नाम ने अधमों को भी उद्धारा हैं ।

कहउँ कहाँ लगि नाम बड़ाई ।
राम न सकहिं नाम गुन गाई [१]।

नहिं कलि करम न भगति बिबेकू ।
राम नाम अवलंबन एकू [२]।

महामंत्र जोई जपत महेसू ।
कासि मुकुति हेतु उपदेसू [३]।

पापिउ जाकर नाम सुमिरहीं ।
अति अपार भव सागर तरहीं [४]।

सुनहु भानुकुल केतु जामवंत कर जेरि कह ।
नाथनाम तव सेतु नर चढ़ि भवसागर तरहिं [५]।

बिस्वास करि सब आस परिहरि दास तव जे होई रहे ।
जपि नाम तव बिनु श्रम तरहि भव नाश सो समरा महे ।

पाई न कोहिं गति पतितपावन राम भजि सुनु सठ मना ।
गनिका अजामिल ब्याधगीध गजादि खल तारे घना ।
आभीर जमन फिरात खस स्वपचादि अति अधरूप जै ।
कहि नाम बारक तेपि पावन होहिं राम नमामि ते [६]।।

---

१. रामचरित मानस १/२६, २. १/२७, ३. ७/१९, ४. ४/२९
५. उपरीवत् ६/१, ६. ६/१३, ७. ७/१३०

राम नाम के परम प्रभाव और प्रेमको कारण ही तुलसी मानस की रचना में प्रवृत्त हुए हैं । तुलसी के मत से कितना भी सुंदर काव्य हो, परंतु राम नाम के बिना सुंदर नहीं लगता । देवर्षि नारद जैसे समर्थ भी राम नाम की याचना करते हैं । नाम स्मरणासक्ति भी भक्ति की एक महत्वपूर्ण भूमिका हैं और वाल्मीकिने भक्तिकी चौदह भूमिकाओं में पाँचवा स्थान दिया हैं । और स्वतः रामने भी नवधा भक्ति में पाँचवा स्थान दिया हैं ।

भनिति मोरि सब गुन रहित बिस्व बिदित गुन एक ।
सो बिचारि सुनिहहिं सुमति जिन्ह के बिमल बिबेक ।।
येहि महँ रघुपति नाम उदारा । अति पावन पुरान श्रुति सारा ।
मंगलभवन अंगलहारी । उमा सहित जेहि जपत पुरारी [१]।
भनिति बिचित्र सुकवि कृत जोऊ । रामनाम बिनु सोइ न जोऊ ।
बिधु बदनी सब भाँति सँवारी । सोहन बसन बिना बर नारी ।
सबगुन रहित कुकबि कृत जानी । राम नाम जस अंकित जानी ।
सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही । मधुकर सरिस संत गुन ग्राही [२]।
जद्यपि प्रभु के नाम अनेका । श्रुति कह अधिक एक तें एका ।
राम सकल नामन्ह ते अधिका । होउ नाथ अध खग गन बधिका ।
राका रजनी भगतीतव राम नाम सोइ सोम ।
अपर नाम उडुगन बिमल बसहु भगत उर ब्योम [३]।
मंत्र राजु नित जपहिं तुम्हारा । पूजहिं तुम्हहिं सहित परिवारा ।
सबु करि माँगहि एक फलु रामचरन रति होउ ।
तिन्ह के मन मंदिर बासहु सिय रघुनंदन दोउ [४]।
मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा । पंचम भजन सो बेद प्रकासा [५]।
मम गुन ग्राम नाम रत, गत ममता मद मोह ।
ताकर सुख सोइ जानइ परमानंद संदोह [६]।

---

१. रामचरित मानस १/९-१०, २. १/१०, ३. ३/४२

४. उपरीवत् २/१२९, ५. ३/३६, ६. ७/४६

रुपासक्ति

परमात्मा के पारमार्थिक स्वरुप का साक्षात्कार करने की तीव्र आकांक्षा को रुपासक्ति कहते हैं और राम भूमि की चौदह भूमिका में इसका दूसरा स्थान हैं ।

लोचन चातक जिन्ह करि राखे । रहहिं दरस जलधर अभिलाषे ।
निदरहिं सरित सिंधु सर बारी । रुप बिंदु जल होहिं सुखारी ।
तिन्ह के हृदय सदन सुखदायक । बसहु बंधु सिय सह रघुनायक [१]।

गुणचिंतनासक्ति

इसका स्थान तीसरा हैं, श्रीराम लक्ष्मण को भक्ति योग बताते हुए इसे पाँचवा स्थान देते हैं और अवधवासियों को अपने गुणगान में रत रहनेवालों को भक्ति की उपाधि देते हैं । भगवान के नाम गुण से मन को भी शांति प्राप्त होती हैं । तुलसी का एकमात्र लक्ष्य प्रभु गुणगान का है उन्होंने मानस के अनेक प्रसंगो में श्रीराम के गुण-गान का गान करके धन्यता का अनुभव किया हैं ।

जसु तुम्हार मानस बिमल हंसिनि जीह्वा जासु ।
मुकुताफल गुन गन चुनइ । बसहु राम हियँ तासु [२]।
मम गुन गावत पुलक सरीरा । गदगद गिरा नयन बह नीरा ।[३]
चौथि भगति मम गुनगुन करइ कपट तजि गान ।[४]
मम गुन ग्राम नाम रत....[५]
मत्वातद् रघुनाथ नाम निरते स्वान्तस्तमःशन्तये ।
भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम् [६]॥
भाषाबद्ध करबि मैं सोई । मोरे मन प्रबोध जेहि होई ।.....
निज संदेह मोह भ्रम हरनी । करउँ कथा भव सरिता तरनी [७]।

१-२. रामचरित मानस २/१२८, ३. ३/१६, ४. ३/३५, ५. ७/४६,
६. ७/समाप्ति ७. १/३१

पूजासक्ति

वाल्मीकि वर्णित रामभक्ति में पूजा सक्ति का चौथा स्थान हैं ।

प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुबासा ।
सादर जासु लहइ नित नासा ।
तुम्हहिं निवेदित भोजन करहीं ।
प्रभु प्रसाद प्रट भूषन धरहीं ...।
कर नित करहिं राम पद पूजा ।
राम भरोस हृदयँ नहिं दूजा [1]।

रामतीर्थासक्ति

भक्ति की चौदह भूमिकाओं में से वाल्मिकीजीने इसको भी चौथी भूमिका में स्थान दिया हैं । तुलसी ने भी तीर्थों का सेवन, सरयू स्नान, अयोध्या निवास आदि को भव शांत के सहज साधन बताये हैं । रामेश्वर महादेव और राम द्वारा सेतु का महत्व भी बताया हैं ।

सुनु कपीस अंगद लंकेसा ।
पावन पुरी रुचिर यह देसा ।
जद्यपि सब बैकुंठ बखाना ।
बेद-पुरान बिदित जगु जाना ।
अवधपुरी रुप प्रिय नहिं सोऊ ।
यह प्रसंग जानई कोउ कोऊ ।
जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि ।
उत्तर दिसि सरजू वह पावनि ।
जा मज्जन तें बिनहिं प्रयासा ।
मम समीप नर पावहिं बासा ।
अति प्रिय मोहिं इहाँ के बासी ।
मम धामदा पुरी सुख रासी [2]।
मम कृत सेतु जो दरसनु करिहीं ।
सो बिनु श्रम भवसागर तरिहीं [3]।।

---

१. रामचरित मानस २/२९, २. ७/४, ३. ६/३

ब्राह्मणपूजा

तुलसी ने मानस के आरंभ से ही ब्राह्मणों का महिमा गान किया हैं। उपरांत वाल्मिकी जी इसे चौथी और पांचवी भक्ति में स्थान देते हैं । ब्राह्मण मोह को हरनेवाला और पृथ्वी के देवता समान हैं । स्वतः प्रभु रामने ब्राह्मण सेवा को विशेष महत्व प्रदान किया हैं । विप्रपद प्रेम को प्रभु ने प्राणप्रिय भक्तों की एक विशेषता बताई हैं । शिव कागभुसुंडि संवाद में भगवत् कृपा के लिये विप्रसेवा का साधन बताया हैं । विप्र द्रोही को कथा सुनने का अधिकार भी नहीं दिया हैं । इस प्रकार ब्राह्मणों के प्रति आदर, प्रेम, सन्मान एवं पूजा का भक्तिमार्ग में बडा महत्व हैं ।

बंदउ प्रथम महिसुर चरना । मोह जनित संसय सब हरना ।[१]
सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी । बिप्र जेवाँइ देहि बहु दाना ।[२]
सुनु गंधर्ब कटउँ मैं तोही । मोहि न सोहाइ ब्रह्मकुल द्रोही ।
मन क्रम बचन कपट तजि जो कर भूसुर सेव ।
मोहिं समेत बिरंचि सिव बस ताकें सब देव ॥

सापत ताड़त परुष कहंता ।
बिप्र पूज्य अस गावहि संता ।
पूजिअ बिप्र सीलगुन हीना ।
सूद्रे न गुन गुने ग्यान प्रबीना [३]।

सगुन उपासक परहित निरत नीति दृढ़ नेम ।
ते नर प्रान समान मम जिन्ह के द्विज पद प्रेम ॥[४]

सुनु मम बचन सत्य सब भाई ।
हरि तोषन ब्रत द्विज सेवकाई ।
अब जनि करहि बिप्र अपमाना ।
जानेसु संत अनंत समाना [५]।
द्विज द्रोहिहि न सुनाइअ कबहूँ ।
सुरपति सरिस होइ नृत जपहूँ [६]।

---

१. रामचरित मानस १/१, २. २/१२९, ३. ३/३३-३४
४. उपरीवत् ५/४८, ५. ७/१०९, ६. ७/१२८

१. वैराग्यवृत्ति (विषयों के प्रति उदासिनता)

मानस में राम–वाल्मिकी संवाद में इसे छठा स्थान दिया गया हैं । श्रीराम भी भक्तिविषयक विवेचना करते हुए इसे छठा स्थान देते हैं । नवधा भक्ति में भी इसे छठा स्थान दिया गया हैं । भक्ति का निरुपण करते हुए श्री राम भी वैराग्यवृत्ति वाले को परमानंद के अधिकारी मानते हैं । निर्मल–मन और संतोष का भी इसी भूमिका में स्थान हैं ।

काम कोह मद मान न मोहा ।
लोभ न छोभ न राग न द्रोहा ।
जिन्ह के कपटदंभ नहिं माया ।
तिन्ह के हृदयँ बसहु रघुराया [१]।
काम आदि मद दंभ न जाके ।
तात निरंतर बस मैं ताकें [२]।
छठ दम सील बिरति बहु करमा ।
निरत निरंतर सज्जन धरमा [३]।
ताकरं सुख सोई जानई परमानंद संदोह [४]॥
निर्मल मन जन सो मोहिं पावा ।
मोहिं कपट छल छिद्र न भावा [५]।
आठवँ जथा लाभ संतोषा ।
सपने हुँ नहि देखे पर दोषा [६]।
जथा लाभ संतोष सदाई [७]।

---

१. रामचरित मानस २/१३०, २. ३/१६, ३. ३/३६
४. उपरीवत् ७/४६, ५. ५/४४, ६. ३/३६, ७. ७/४६

अनन्यगति

इसका स्थान सातवाँ है । शबरी और राम संवाद में इसे नवम स्थान दिया गया हैं । भक्तिमार्ग निरुपण में श्रीराम भी अंतिम संदेश देते हुए इस बात का प्रतिपादन करते हैं ।

सबके प्रिय सबके हितकारी ।
दु:ख सुख सरिस प्रसंसा गारी ।
कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी ।
जागत सोवन सरन तुम्हारी ।
तुम्हहिं छाँडि गति दूसरि नाहीं ।
राम बसहु तिन्ह के मनमांही [१]।

नवम सरल सब सन छलहीना ।
मम भरोस हिर्यं हरष न दीना [२]।

सरल सुभाव न मन कुटिलाई ।
जथा लाभ संतोष सदाई ।
मोर दास कहाई नर आसा ।
करइ तो कहहु कवन बिस्वासा ।
बैर न बिग्रह आस न त्रासा ।
सुखमय ताहि सदा सब आसा [३]।

सर्वस्वभाव

दुन्यवी प्रेमसूत्रों में से मुक्त होकर इस प्रेम को प्रभु में स्थापित कर देना। जिसे सर्वस्वभाव कहते हैं । वाल्मिकीजी ने इसे भी भक्ति की भूमिकाओं में नवम स्थान दिया है ।

स्वामी सखा पितु मातु गुर जिन्ह के सब तुम्ह तात ।
मन मंदिर तिन्ह के बसहु सीय सहित दोउ भ्रात ।[४]

---

१. रामचरित मानस २/१३०, २. ३/३६, ३. ७/४६, ४. २/१३०

गुरु पितु मातु बंधु पति देवा । सब मोहि कहँ जानै दृढ़ सेवा ।

लोक-संग्रह वृत्ति

इसको वाल्मीकि ने दसवाँ स्थान दिया है । नीति तत्परता, प्राणिमात्र में प्रभुदर्शन संसार त्याग न करने पर भी प्रभु भक्ति दृढ़ बनाये रखना और लोक में हीं उसका निर्वाह करना, परहित की भावना रखना, मन-कर्म-वचन से धर्म का अनुसरण और परपीड़न वृत्ति से पर रहना आदि का समावेश इस भूमिका में होता हैं ।

सगुन उपासक परहित निरत नीति दृढ़ नेम ।
ते नर प्रान समान मम जिन्ह के द्विज पद प्रेम [१]॥
अवगुन तजि सब के गुन गहहीं ।
बिप्र धेनु हित संकट सहहीं ।
नीति निपुन जिन्ह कर जग लीका ।
घर तुम्हार तिन्ह कर मनु लीका [२]।
सो अनन्य जाके असि मति न हरइ हनुमंत ।
मैं सेवक सचराचर रुप स्वामी भगवंत [३]।
अब गृह जाहु सखा सब भजेहु मोहि दृढ़ नेम ।
सदा सर्वगत सर्बहित जानि करेहु अति प्रेम [४]॥
जाहु भवन मम सुमिरन करेहू ।
मन क्रम बचन धर्म अनुसरेहू [५]।
परहित सरिस धर्म नहिं भाई ।
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई ।
नर सरीर धरि जे पर पीरा ।
करहिं ते सहहिं महा भव भीरा [६]।
परम धर्म श्रृत्ति बिदित अहिंसा [७]।

---

१. रामचरित मानस ५/४८, २. २/१३१, ३. ४/३, ४. ४/१६, ५. ७/२०, ६. ७/४१, ७. ७/१२१

भागवतभक्ति

मानस में वाल्मिकी जी भागवत भक्ति को रामभक्ति की चौदह भूमिकाओं में से ग्यारहवाँ स्थान देते हैं । जिनमें भक्तों के गुणों एवं चरित्रों का श्रवण मनन पर बल दिया हैं ।

गुन तुम्हार समुझई निज दोषा ।
जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा ।
राम भगत प्रिय लागहिं जेही ।
तेहि उर बसहु सहित बैदेही [1]।

कहत सुनत सति भाउ भरत को ।
सीय राम पद होइ न रत को ।
सुमिरत भरतहिं प्रेमु राम को ।
जेहि न सुलभ तेहि सरिस आप को [2]।

भरत चरित करिनेमु तुलसी जो सादर सुनहिं ।
सीयराम पद प्रेम अवसि होइ भव रस बिरति [3]।।

त्यागवृत्ति

इस भूमिका को वाल्मीकिजी ने रामभक्ति की चौदह भूमिकाओं में बारहवाँ स्थान दिया हैं । जिनमें सांसारिक संबंधो में ममता का त्याग, और विषय सुख की उपेक्षा करने का बताकर स्वर्ग और अपबर्ग के सुख को भी तृणवत् समजने की बात बताई हैं ।

जाति पाँति धनु धरम बडाई ।
प्रिय परिवार सदनु सुखदाई ।
सब तजि तुम्हहिं रहइ उर लाई ।
तेहि के हृदयँ बसहु रघुराई [4]।
तृन सब विषय सवर्ग अपबर्गा [5]।

---

१. रामचरित मानस २/१३१, २. २/३०४, ३. २/३२६, ४. २/१३१, ५. ७/४६

तन्मयता

इसका स्थान रामभक्ति की चौदह भूमिकाओं में तेरहवाँ और नवधाभक्ति में सातवाँ हैं ।

सरगु नरकु अपबरगु समाना ।
जहँ तहँ देख धरं धनु बाना ।
करम बचन मन राउर चेरा ।
राम करहु तहि के उर डेरा [1]।
सातवँ सम मोहि मय जग देखा ।
मो तें अधिक संत कर लेखा [2]।

निष्कामप्रेमासक्ति

रामभक्ति में इसका स्थान अंतिम हैं और रामभक्ति की चौदह भूमिकाओं में अति आवश्यक हैं । श्री रामने भी लक्ष्मण को भक्तियोग बताते हुए इस भावना का प्रतिपादन किया हैं ।

जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु ।
बसहु निरंतर तासु मन सो राउर निज गेहू [3]।
बचन कर्म मन मोरि गति भजन करहिं निःकाम ।
तिन्ह के हृदय कमल महुँ करउँ सदा विश्राम [4]।

---

१. रामचरित मानस २/१३१
२. उपरीवत् ३/३६
३. उपरीवत् २/१३१
४. उपरीवत् ३/१६

भक्ति के प्रादुर्भाव के लिए कर्ममूलक, ज्ञानमूलक और भक्तिमूलक उपासना मार्ग

भक्ति प्रादुर्भाव में तुलसी ने तीन प्रकार के साधन बताये हैं, भक्ति तक पहुँचने की इस सीढ़ी में श्री राम स्वयं कहते हैं कि धर्म का पालन और ब्राह्मणों के प्रति प्रेम ये दो साधनों से मन विषयों से विरक्त होता हैं और विरक्ति से भागवत भक्ति में अनुराग होता हैं । फिर श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य तथा आत्मनिवेदनादि नौ भक्ति से भागवत् भक्ति पूर्णरूप से पुष्ट होती हैं ।

पार्वती जी रामभक्ति का मूल आधार कर्म साधना को मानती हैं ।

कर्म-मूलक भक्ति

नर सहस्त्र महँ सुनहु पुरारी । कोउ एक होइ धर्म व्रत धारी ।
धर्मसील कोटिन्ह महँ कोई । विषय बिमुख बिरागरत होई ।
कोटि बिरक्त मध्य श्रृति कहई । सम्यक ग्यान सीकृत कोउ लहई ।
ग्यानवंत कोटिक महं कोऊ । जीवनमुक्त सकृत जग सोऊ ।
तिन्ह सहस्त्र महुँ सब सुख खानी । दुर्लभ ब्रह्मलीन बिग्यानी ।
धर्मसील बिरक्त अस ग्यानी । जीवनमुक्त ब्रह्म पर प्रानी ।
सब तें सो दुर्लभ सुरराया । राम भगति रत गत मद माया [१]।

ज्ञान-मूलक भक्तिमार्ग

तुलसीदासजी ने रामभक्ति के लिए विवेकमार्ग का प्रतिपादन करके ज्ञानमूलक भक्तिमार्ग बताया हैं ।

होई बिबेकु मोह भ्रम भागा ।
तब रघुनाथ चरन अनुरागा ।[२]

---

१. रामचरित मानस ७/५४
२. उपरीवत् २/९३

भक्तिमूलक भक्तिमार्ग

गुरु आज्ञा का पालन करने से और सद्‌गुरु के वचनों को (उपदेश श्रवण) श्रद्धापूर्वक सुनने से भी विषय नाश होता हैं और विषयों में से आशा छूट जाने के बाद निर्मल मन जो श्रध्धापूर्वक रघुनाथ राम की भक्ति रुपी औषधि का सेवन किया जाय तो सद्‌बुद्धि में वृद्धि होती हैं तथा विराग प्राप्त होता है और विषयतृष्ण निर्मूल हो जाती है एसी विषयमुक्त स्थिति में विमल ज्ञान जिसे तुलसी विज्ञान कहते हैं इसकी सहायता की जाय तो साधक का हृदय भक्ति से हरा-भरा हो जाता हैं । इसे भक्ति-मूलक मार्ग भी कह सकते हैं।

रामकृपाँ नासहिं सब रोगा ।
जौं येहि भाँति बनै संजोगा ।
सद्‌गुर वैद बचन बिस्वासा ।
संजम यह न बिषय की आसा ।
रघुपति भगति सजीवन तूरी ।
अनूपान श्रद्धा मति पूरी ।
येहि बिधि भलेहि सो रोग नसाहीं ।
नाहिं त कोटि जतन नहिं जाहीं ।
जानिअ तब मन बिरुज गोसाईं ।
जब उर बल बिराग अधिकाई ।
सुमति छुधा बाढई नित नई ।
बिषय आस दुर्बलता गई ।
बिमल ज्ञान जल जब सो नहाई ।
तब रह राम भगति उर छाई ।

---

१. रामचरित मानस ----

सेवा और धर्म मूलक भक्तिमार्ग

तुलसी के मत से ब्राह्मणों के चरणों में प्रीति और धर्माचरण से मन विषयमुक्त होकर प्रभुचरण में लगता हैं और इस प्रकार नवधा भक्ति में मन प्रवृत्त होता हैं ।

भगति साधन कहौं बखानी ।
सुगम पंथ मोहि पावहिं प्रानी ।
प्रथमहिं बिप्र चरन अति प्रीती ।
निज निज धरम निरत श्रृति रीती ।
येहि कर फल मन बिषय बिरागा ।
तब मम चरन उपज अनुरागा ।
श्रवनादिक नव भक्ति दृढ़ाहीं ।
मम लीला रति अति मन माहीं [१]।

शिव - राम की समन्वय भक्ति ।

तुलसी ने रामभक्ति और शिवभक्ति का सुभग समन्वय मानस में बताया हैं । शिव राम को अपने इष्ट मानते हैं और राम शिव को । श्रीरामने श्री रामेश्वर महादेव की स्थापना के समय शिव का महत्व बढ़ाकर रामभक्ति को प्राप्त करने के लिये शिव भक्ति को साधन बताया ।

संकर बिमुख भगति चह मोरी ।
सो मार की मूढ़ मति थोरी [२]।
संकर प्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास ।
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ बास [३]।।
जे रामेश्वर दरसनु करिहहिं ।
ते ननु तजि मम लोक सिधरिहहिं [४]।
जो गंगाजल आनि चढ़ाइहि
सो सायुज्य पुनित नर पाइहि [५]।

---

१. रामचरित मानस ३/१६, २-३-४. ६/२, ५. ६/३

शिव और राम दोनों में से किसी का भी द्रोह हो ये तुलसी सहन नहीं कर सकते । सालोक्यमुक्ति प्राप्त करने के लिये केवल रामेश्वर महादेव के दर्शन को ही पर्याप्त माना हैं । और सायुज्य मुक्ति की प्राप्ति के लिए रामेश्वर महादेव को गंगाजल चढ़ाना ही काफि हैं । निष्कामी और निष्कपटी शिव उपासक भक्ति के अधिकारी बनते हैं और शिव सेवा द्वारा प्राप्त हुई रामभक्ति सभी मुक्तियों से भी उत्तम हैं ।

होई अकाम जो छल तजि सेइहि भगति मोरी तेहि संकर देहहि ।[१]

अयोध्या निवासियों से भक्ति पथ का मार्गदर्शन करते हुए श्रीराम कहते हैं कि शंकर के भजन के बिना राम भक्ति प्राप्त होनी असंभव हैं ।

औरौ एक गुपुत मत सबहि कहौं कर जोरि ।
संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि [२]।।

मानस के आरंभ में ही तुलसीदासजी ने कहा हैं कि शिव और पार्वतीजी को श्रद्धा और विश्वास का स्वरुप मानकर इन दोनों की कृपा के बिना सिद्ध पुरुष भी अपने अंतःकरण में बैठे हुए ईश्वर को नहीं देख सकते हैं ।

भवानी शंकरौ वंदे श्रद्धा विश्वास रूविणै ।
याभ्यां विना न पश्यंति सिद्धाः स्वान्तः स्थमिश्वरम् [३]।।

श्री राम के मत से शिवद्रोही कभी भी सुख को प्राप्त नहीं कर सकता ।

चातक रहत तृषा अति ओही ।
जिमि सुख लहइ न संकर द्रोही [४]।

---

१. रामचरित मानस ६/३
२. उपरीवत् ७/४५
३. उपरीवत् १/१ (श्लोक)
४. उपरीवत् ४/१७

मानस के अनुसार श्री राम के सेवक, स्वामी और सखा तथा उनके परमहितकारी महादेवजी ही हैं। तुलसी शिव को विष्णु के बराबर स्थान देते हैं। विष्णु और शिव के उपासको में धार्मिक अथवा सांप्रदायिक मत से कोई विरोध न रहे इस दृष्टि से मानस में स्थान स्थान पर तुलसी ने शिव और विष्णु को समान स्थान दिया हैं। दक्ष यज्ञ में शिव के न जाने पर ब्रह्मा और विष्णु भी नहीं जाते हैं। दक्षयज्ञ में ब्रह्मा और विष्णु शिव का अपमान देखना नहीं चाहते – एसी विचारधारा प्रकट करके लोकनायक तुलसी शैव्य उपासकों और वैष्णवों को एक दूसरे के करीब लाना चाहते हैं। जिस भक्तिभाव भरे शब्दों में तुलसी अपने इष्ट श्री राम की स्तुति करते हैं शायद एसे ही आदर से वे शिवकी भी स्तुति करते हैं।

सेवक स्वामी सखा सिय पीके ।
हित निरुपधि सब बिधि तुलसी के [१]।
संत संभु श्रीपति अपबादा ।
सुनिअ जहँ तहँ असि मरजादा ।
काटिअ तासु जीभ जु बसाई ।
स्त्रवन मूंदि न त चलिअ पराई [२]।
बिष्णु बिरंचि महेसु बिहाई ।
चले सकल सुर जान बनाई [३]।
नमामीशमीशान निर्वाण रुपं ।
विभु व्यापकं ब्रह्म वेद स्वरुपं ।
अजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं ।
चिदाकाशमाकाश वासं भजेऽहं ।
निराकार मोंकार मूलं तुरीयं ।
गिरा ज्ञान गोतीतमीशं गिरीश ।
करालं महाकाल कालं कृपालं ।
गुणागार संसार पारं नतोऽहं [४]।

---

१. रामचरित मानस १/१५, २. १/६४, ३. १/६१, ४. ७/१०८

भक्ति के अवलंबन – सगुण राम ।

भक्त श्री राम के पारमार्थिक अर्थात् सगुण स्वरुप का साक्षात्कार करके ही संसार सागर के पार उतर सकता हैं । राम का यथार्थ ज्ञान प्राप्त होने से जागने पर जैसे स्वप्न की सृष्टि नष्ट हो जाती हैं वैसे ही संसार की माया छूट जाती हैं । रामजी की प्राप्ति के बाद आवागमन अर्थात् जन्म-मृत्यु छूट जाता हैं । जैसे सरिता सागर में एकरुप हो जाती हैं ठीक उसी भांति भगवान की प्राप्ति के बाद भक्त भगवानमय हो जाता हैं ।

परंतु भक्त को यह बोध केवल रामकृपा से ही होता हैं ।

झूठउ सत्य जाहि बिनु जानें ।
जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचाने ।
जेहि जानें जग जाई हेराई ।
जागें ज़था सपन भ्रम जाई [१]।
सरिता जल जलनिधि महुँ जाई ।
होइ अचल जिमि जिव हरि पाई [२]।
तुम्हरिहि कृपाँ तुम्हहिं रघुनंदन ।
जानहिं भगत भगत उर चंदन [३]।

राम का निर्गुण स्वरुप मन के लिये अविषयी होने के कारण भक्तिमार्ग के लिए उपयुक्त नहीं हैं इसलिए बिबुध लोग श्रीराम के अवतारी पुरुष का ही ध्यान करते हैं और श्री राम की स्तुति करते हुए संसार सागर पार उतरने की ईच्छा करते हैं ।

अगत्स्य

जद्यपि ब्रह्म अखंड अनंता ।
अनुभवगम्य भजहिं जेहि संता ।
अस तव रुप बखानउँ जानउँ ।
फिरि फिरि सगुन ब्रह्म रति मानउँ [४]।

---

१. रामचरित मानस १/११२, २. ४/१४
३. उपरीवत् २/१२७, ४. ३/१३

निर्गुण ब्रह्म के साक्षात्कार में माया बाधा रूप हैं और माया के द्वारा विक्षेप के कारण जीव उसी प्रकार ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं कर सकते । जिस प्रकार पत्तों के फैल जाने पर तालाब का जल दृष्टिगोचर नहीं होता।

आश्चर्य की बात तो यह हैं कि वेदों ने हंमेशा निर्गुण का ही प्रतिपादन किया है परंतु 'मानस' में वेद भी अजन्मा, अविनाशी, अद्वैत और अनुभव गम्य तथा मन से पर एसे निर्गुण ब्रह्म की व्याख्या करना और उसे जानने का प्रयास छोडकर सगुण की अवतारी लीला का महिमागान करते हैं और वे श्री राम से भक्ति की याचना करते हैं ।

पुर-हनि सघन औट जल बेगि न पाइम मर्म ।
मायाछन्न न देखिए जैसे निर्गुण ब्रह्म [1]।

वेद

जे ब्रह्म अजमद्वैतमनुभवगम्य मन पर ध्यावही ।
ते कहहुँ जानहुँ नाथ हम तव सगुन जस नित गावहीं ॥
करुनायतन प्रभु सद्‌गुनाकर देव यह बर माँगही ।
मन बचन कर्म बिकार तजि तव चरन हम अनुरागहीं [2]।

सुतीक्ष्णजी

अविरल भगति बिरति विज्ञाना ।
होहुं सकल गुन ज्ञान निधाना ।
प्रभु जो दीन्ह सो वस मैं पावा ।
अब सो देहु मोहिं जो भावा ।
अनुज जानकी सहितप्रभु चाप बान धर राम ।
मम हिय गगन इंदु इव बसहु सदा निहकाम [3]।

---

१. रामचरित मानस ३/३९, २. ७/१३, ३. ३/११

राम के पारमार्थिक स्वरुप हंमेशा हंमेशा का लिये हृदय में न बसा रहें तब तक भक्ति अधूरी हैं । इसी लिए सुतीक्ष्णजी ने श्रीराम के पास अपने हृदय में बसे रहने का वर माँगा हैं । राम के पारमार्थिक स्वरुप के ध्यान का प्रभाव एसा हैं कि इसके भावपूर्वक के स्मरण से भक्त को परमगति प्राप्त होती है । राक्षस-लोग तो प्रभु को बेरभाव से स्मरण करने पर भी परमगति को प्राप्त करते हैं, क्योंकि सगुणस्वरूप के स्मरण का वहि तो फल हैं । राम का वेर भाव से निरंतर स्मरण करने पर निशाचर रामाकार हो जाते हैं और उनके भावबंधन भी छूट जाते हैं ।

उमा राम मृदुचित करुनाकर ।
वैर भाव सुमिरत मोहि निसिचर ।
देहिं परम गति सो जियँ जानी ।
अस कृपालु को कहहू भवानी [1]।
सुधावृष्टि भइ दुहुँ दल उपर ।
जिए भालु कपि नहिं रजनीचर ।
रामाकर भए तिन्ह के मन ।
मुक्त भए छूटे भव बंधन [2]।

---

१. रामचरित मानस ६/१४५

२. उपरीवत् ६/१४४

श्रीराम के सगुण रुप में भी शिवजी और कागभुसुंडिजी भगवान के ब्रह्मरुप का ध्यान धरनेवाले हैं । सुतीक्ष्ण जैसे संत श्री राम के राजारुप की उपासना करनेवाले हैं । वे चतुर्भुज स्वरुप को भी सहन नहीं कर सकते हैं । कोई प्रभु के वनवासी रुप के उपासक हैं ।

शिवजी

बंदउँ बालरुप सोइ रामू ।
सब सिधि सुलभ जपत जिस नामू [१]।

कागभुसुंडिजी

जब जव राम मनुज तनु धरहीं ।
भकत हेतु लीला बहु करहीं ।
तब तब अवधपुरी मैं जाऊँ ।
बाल चरित बिलोकि हरषाऊँ ।
जन्म महोत्सव देखउँ जाई ।
बरष पाँच तहँ रहउँ लोभाई ।
इष्ट देव मम बालक रामा ।
सोभा वपुष कोटि सत कामा [२]।

भूप रुप तब राम दुबारा ।
हृदयँ चतुर्भुज रुप देखावा ।
मुनि अकुलाई उठा तब कैसे ।
बिकल हीन मनि फनिबर जैसे [३]।
जदपि बिरज ब्यापक अविनासी ।
सबके हृदय निरंतर बासी ।
तदपि अनुज श्री सहित खरारी ।
बसहुँ मनसि मम काननचारी [४]।

---

१. रामचरित मानस १/११२, २. ७/७५
३. ३/१०, ४. ३/११

मुक्ति के प्रकार

मानस में प्रमुखतः हमे तीन प्रकार की मुक्ति के दर्शन होते हैं । (१) सायुज्य (२) सालोक्य (३) सासव्य।

सायुज्य :

शबरी :- शबरीने प्रभु के श्रीमुख से नवधाभक्ति सुनने के बाद प्रभु के सामने ही योगाग्नि प्रकट करके इसमें अपने शरीर को शांत करके सायुज्यमुक्ति को पाया हैं ।

कुंभकर्ण :- तुलसी के मत से कुंभकर्ण को भी सायुज्य मुक्ति की प्राप्ति हुई हैं ।

रावण :- 'मानस' के अनुसार रावण को भी इस परमगति प्राप्त हुई है।

तजि जोग पावक देह हरिपद ।
लीन भई जहँ नहि फिरे ।[1]
तासु तेज प्रभु बदन समाना ।[2]
तासु तेज समान प्रभु आनन ।[3]

---

१. रामचरित मानस ३/३६

२. उपरीवत् ६/७१

३. उपरीवत् ६/१०३

सामिप्य और सालोक्य :

जटायु को सामिप्य की प्राप्ति हुई हैं । परन्तु अंत में तुलसी कहते हैं कि वह हरि के लोक में जाता हैं ।

गीध :

गीध देइ तजि हरि हरि रुपा ।
भूषन बहु पट पीत अनूपा ।
स्याम गात बिसाल भूज चारी ।
अस्तुति करत नयन भरि बारी [१]।
तनु तजि तात जाहु मम धामा ।
देहुँ काह तुम्ह पूरन कामा [२]।
अबिरल भगति माँगि बर गीध गयऊ हरि धाम ।[३]
हरिपुर गयउ परम बड़ भागी ।[४]

मानस में बलि और बिभिषन को सालोक्य मुक्ति मिलती है ।

बालि :

राम बाकि निज धाम पठाव ।[५]

बिभीषण :

करेउ कल्प भरि राज तुम्ह मोहि सुमिरहुं मन माहिं ।
पुनि मम धाम पाइहहु जहाँ संत सब जाहिं [६]।
अंतकाल रघुपतिपुर जाहीं ।
बिनु श्रम राम धाम सिधावही [७]।

---

१. रामचरित मानस ३/३२, २. ३/३१, ३. ३/३२

४. उपरीवत् ४/२७, ५. ४/११, ६. ६/११६, ७. ७/१३०

भेद-भक्ति :

रामभक्त अभेदयुक्त मोक्ष को नहीं चाहते परंतु भेदभक्ति की कामना करते हैं । ज्ञानप्राप्ति से इश्वर-जीव का भेद मिट जाता हैं, जीव ब्रह्ममय हो जाता हैं, परंतु भक्तजीव ब्रह्माकार बनना नहीं चाहते, भक्त ही बने रहना चाहते हैं। शरभंग जैसे समर्थ पुरुष भी अपनां योग, यज्ञ, जप, तप ब्रत आदि प्रभु के चरणों में अर्पित करके बदले में भक्ति की याचना करते हैं । दशरथजी भी भेद-भक्ति ही मांगते हैं । श्री राम के ज्ञान देने पर भी वह मोक्ष न चाहकर सुरधाम ही जाते हैं ।

जोग जग्य जपतप ब्रत कीन्हा ।
प्रभु कहँ देइ भगति बर कीन्हा ...।
ताते मुनि हरिलीन न भयऊ ।
प्रथमहिं भेद भगति बर लयऊ [१]।
रघुपति प्रथम प्रेम अनुमाना ।
चितई पितहिं दीन्हेउ दृढ़ ग्याना ।
तातें उमा मोच्छ नहिं पायो ।
दसरथ भेद-भगति मन लायो ।
सगुनोपासक मोच्छन लेहीं ।
तिन्ह कहुँ राम भगति निज देहीं ।
बार बार करि प्रभुहि प्रनामा ।
दशरथ हरपि गएउ सुरधामा [२]।

---

१. रामचरित मानस ३/८-९

२. उपरीवत् ६/११२

कागभुसुंडि द्वारा भेदभक्ति की स्पष्टता ।

श्रीराम अखंड ज्ञान स्वरुप हैं । जीव माया के वश हैं । माया सबको व्यापति हैं - अर्थात् सारे जीवों को मोहित करती हैं परंतु जीस जीव पर प्रभु कृपा होती हैं उसको कुछ भी अहित न हीं कर पाती और इस प्रकार जीव-जीव रहकर भी इश्वर का भजन कर सकता है और विद्या के बलसे इश्वर जीव का भेद होने पर भी अभेद सा स्थापित होता हैं । जिसे भेद भक्ति कही गई हैं ।

ग्यान अखंड एक सीताबर ।
माया बस्य जीव सचराचर ।
जौ सब के रह ज्ञान एक रस ।
ईश्वर जीवहिं भेद कहहु कस ।
मायाबस्य जीव अभिमानी ।
ईस बस्य माया गुनखानी ।
परबस जीव खबस भगवंता ।
जीव अनेक ऍक श्रीकंता ।
मुध भेद जद्यपि कृत माया ।
बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया ।
हरि सेवकई न ब्याप अविद्या ।
प्रभु प्रेरित ब्यापइ तेहि विद्या ।
तातें नासन होइ दास कर ।
भेद भगति बाढ़ई बिहंग बर [1]।

---

१. रामचरित मानस ७/७८-७९

नवधा भक्ति :

मानस के अरण्यकांड में दो बार नवधा भक्ति का उल्लेख हैं। प्रथम संवाद राम और सैमित्र के बीच हुआ हैं और दूसरा संवाद शबरी एवं श्री राम के बीच हुआ है।

प्रथम संवाद में जो नवधा भक्ति का निरुपण है वह भागवतभक्ति पर आधारित है अर्थात् श्रीमद्‌भागवत में जो नवधा भक्ति का वर्णन किया है इसके आधार पर है जिसे हम प्रथम अध्याय में देख चूके हैं। इसी आधार पर हम मानस की प्रथम संवाद की नवधा भक्ति को देखेंगे।

श्रमवादिक नव भक्ति दृढ़ाहीं।
मकलीला रति अति मन माहीं।
संत चरन पंकज अति प्रेमा।
मनक्रम बचन भजन दृढ़ नेमा।
गुरु पितु मातु बन्धु पति देवा।
सब मोहि कहँ जानै दृढ़ सेवा।
मम गुम गावन पुलक सरीरा।
गद गद गिरा नयन बह नीरा।
काम आदि मद दंभ न जाके।
तात निरन्तर बस मैं ताकै।
बचन-कर्म-मन मोहि गति भजनु करहिं निःकाम।
तिन्ह के हृदय कमल महुँ, करउँ सदा विश्राम। ३/१६

---

१. रामचरित मानस ३/१६

इस प्रसंग में भागवदिय नवधा भक्ति के लिये साधन-भक्ति के नव अंगो का भी प्रतिपादन किया है ।

१) प्रभु की लीला के प्रति प्रेम ।
२) संत पद प्रेम ।
३) मन वचन कर्म से प्रभु की आराधना ।
४) अपनां सर्वस्य ईश्वर को मानना ।
५) ईश्वर का भजन ।
६) कीर्तन ।
७) दंभ और कामादि दुर्गुणों का त्याग करना ।
८) पूर्ण रूप से प्रभु का अवलंबन ।
९) निष्काम भाव से ईश्वर चिन्तन ।[1]

नवधाभक्ति का दूसरा प्रसंग ।

अरण्यकांड के श्रीराम शबरी संवाद में भगवान श्री राम शबरी को भक्ति का रहस्य बतलाते हुए नवधा भक्ति का सुंदर निरुपण करते हैं ।

नवधा भक्ति कहउं तोहि पाहीं । सावधान सुनु धरु मन माहीं ।
प्रथम भक्ति संतन कर संगा । दूसरी रति मम कथा प्रसंगा ।
गुरु पद पंजक सेवा । तीसरि भगति अुमान ।
चौथी भगति मम गुन, गन । करई कपट तजि गान ॥
मन्त्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा । पंचम भजन सो बेद प्रकासा ।
छाठ दम सील विरति बहु करमा । निरत निरन्तर सज्जन धरमा ।
सातवें सम मोहि मय जग देखा । मोते संत अधिक करि लेखा ।
आठवें जथा लाभ संतोषा । सपनेहुं नहिं देखई पर दोषा ।
नवम सरल सबसन छल हीना । मम भरोस हिय हरष न दीना [2]।

---

१. रामचरित मानस ३/१६
२. उपरीवत् ३/३६

श्रीराम की उदारता

शबरी को नवधाभक्ति योग सुनाकर प्रभु श्री राम कहते हैं कि मेरे भक्ति करनेवाला चाहे नारी, पुरुष या सचराचर किसी में से भी हो, परंतु वह प्राणी (जो भक्त है, नौं में से एक भी भक्ति को जो आत्मसात करनेवाला है) मुझे अत्यंत प्रिय है ।

नव महुँ जिन्ह के एकउ हाई ।
नारि पुरुष सचराचर कोई ।
सोई अति सय प्रिय भामिनि मोरे ।
सकल प्रकार भगति दृढ तोर [१]।

मानस में भागवतमतानुसार नवधाभक्ति ।

भागवत जो नवधा भक्ति का वर्णन है, उसी के अनुसार तुलसी ने भी अपने विचार स्पष्ट करके भागवत् भक्ति का अनुमोदन किया है ।

१) *श्रवण :-* जीवनमुक्त विरक्त महात्मा भी हरिगुण और हरिलीला का श्रवण करते हैं ।

जीवन मुक्त महामुनि जेऊ ।
हरिगुन सुनहि निरंतर तेऊ [२]।

२) *कीर्तन :-* कलियुग में केवल हरिगुणगान से ही सहज में मुक्ति प्राप्त हो जाती हैं ।

कलियुग केवल हरिगुन गाहा ।
गावत नर पावहिं भव थाहा [३]।

कलियुग में योग, यज्ञ, ज्ञान आदि निरर्थक है । श्री राम का 'गुणगान' ही एकमात्र आधार हैं ।

कलियुग जोग न जग्य न ग्याना ।
एक अधार राम गुन गाना [४]।

---

१. रामचरित मानस ३/३६, २. १/११३, ३-४. ७/१०३

३) *स्मरण :-* भगवान के नाम के स्मरणमात्र से मनुष्य संसार सागर से पार उतर सकता है ।

सादर सुमिरन जे नर करहीं ।

भव बारिधि गोपद इव तरहीं ॥[1]

पापी व्यक्ति भी भगवान के नाम स्मरण से तैर जाता है ।

पापिउ जाकर नाम सुमिरही ।

अति अपार भव सागर तरहीं ॥[2]

४) *पाद सेवन :-* भगवान श्री राम के चरणों में प्रेम को साधन और साध्य दोनों माना हैं ।

साधन सिद्धि राम पद नेहू ।

मोहि लखि परत भरत मत एहू ।[3]

और इसीलिए श्री रामकी चरण सेवा करनेवालो अंगद और हनुमान भाग्यवान हैं ।

बड भागी अंगद हनुमाना ।

चरन कमल चांपत बिधि नाना ।[4]

५) *अर्चन :-* प्रतिदिन प्रभु की पूजा करना भक्तों की दिनचर्या का एक भाग हैं ।

कर नित करहिं राम पद पूजा ।

राम भरोस हृदय नहिं दूजा ।[5]

---

१. रामचरित मानस ७/११९, २. ४/२९, ३. २/२८९
४. उपरीवत् ६/११, ५. २/१२९

६) *वंदन :-* तुलसी के मत से जो सिर भगवान और गुरु के चरणों में वंदन नहीं वह कहु तुम्बी के समान निरर्थक हैं ।

ते सिर कटु तुम्बरि समतूला ।

जे न नमत हरि गुर पद भूला [१]॥

७) *दास्य :-* 'मानस' के मत से सेवक का इश्वर के प्रति सेव्य भाव दास्य भाव होना चाहिए । इस सेवक सेव्य भाव की उपासना को भवसागर तरने का श्रेष्ठ उपाय माना हैं ।

सेवक सेव्य भाव बिनु, भव न तरिअ उरगारि ।
भजहु राम पद पंकज, अस सिद्धांत बिचारि [२]॥

८) *सख्य :-* भगवान राम के सखा बनकर सुग्रिव विभीषण आदि ने कल्याण पाया हैं ।

ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे ।
भए समर सागर कहं बेरे [३]।

९) *आत्मनिवेदन :-* भक्त प्रभु चरण में अपना सबकुछ समर्पित करके केवल उनकी कृपा की ही कामनां करता हैं ।

तुम्हहि छांड़ि गति दूसरि नाहीं ।
राम बसहु तिन्ह के मन माहीं [४]।

---

१. रामचरित मानस १/११३
२. उपरीवत् ७/११९
३. उपरीवत् ७/८
४. उपरीवत् २/१३०

भक्तिरस

परमानंदमय भगवान के महात्म्य से उत्पन्न हर्ष के कारण द्रुतचित्त की भगवद् विषयक शुद्ध सात्विकी रीति ही विशुद्ध भक्तिरस का स्थायी भाव हैं ।[1] 'मानस' में वैसे तो भक्ति की सभी भूमिकाओं का वर्णन हैं जिन्हें हम आगे देख चूके हैं परंतु वत्सलभक्ति रस और शान्त भक्तिरस ये दो मानस में विशेष हैं । दास्य भक्ति का तो अंततक निर्वाह हुआ हैं ।

वत्सल भक्तिरस

वत्सल भक्तिरस का स्थायी भाव ईश्वर विषयक वात्सल्यरति है [2]। 'मानस' के कुछ पात्र भगवान की उपासना वात्सल्यभाव से करते हैं । मनु और शतरुपाने वर्षों की साधना के पश्चात् प्रभु प्रसन्न होने पर प्रभु के समान ही पुत्रपाने का वर मांगा हैं । वह वत्सलभक्ति का उत्तम उदाहरण हैं ।

दानि सिरोमनि कृपानिधि कहउँ नाथ सतिभाउ ।

चाहउँ तुम्हहि समान सुत प्रभु सन कवन दुराउ [3]।

तुलसी साहित्य में वत्सल भक्ति के आश्रय दो प्रकार के हैं । (३) दशरथ, कौशलयादि जिनका राम से वस्तुतः पाल्यपालक संबंध है अथवा जो इस वास्तविक संबंध के बिना भी उन्हें लाल्य-पाल्य रुप में देखते हैं।

---

१. भक्तिरसायण २/१३ संदर्भ - रामचरित मानस में जीवन मूल्य पृ. १०८

२. पाल्य पालक भावेन सा वत्सल रतिर्भवेत । (उद्धरण) राम चरित मानस में जीवन मूल्य पृ. १०८

३. रामचरित मानस १/१४९

शांतभक्तिरस

शांत भक्तिरस का स्थायी भाव संकल्प-विकल्प से रहित तत्वज्ञानी भक्तों की शांतारति हैं [1]। स्वयं तुलसीदास और उनके शंकर सुतीक्ष्ण, अगस्त्य, सनक आदि की शांता रति अनेक स्थानों पर सुंदरता के साथ व्यक्त हुई हैं।

पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि प्रगट परावर नाथ।
रघुकुल मनि मम स्वामि सोइ कहि सिवँ नायउ माथ [2]।
पुनि पुनि प्रभु पद कमल गहि जोरि पंकगहि पानि।
बोलीं गिरिजा बचन बर मनहुँ प्रेम रस सानि॥

तुम्हकृपाल सब संसउ हरऊ।
राम स्वरुप जानि मोहि परऊ [3]॥
सुनत अगस्ति तुरत उठि धाए।
हरि बिलोकि लोचन जल छाये [4]॥

तब मुनि हृदयँ धीर धरि-गहि पद बारहिंबार।
निज आश्रम प्रभुआनि करि पूजा बिबिध प्रकार [5]।

संतसंग अपबर्गकर कामी भवकर पंथ।
कहहिं संतकबि कोबिद श्रृति पुरान सदग्रंथ।

सुनि प्रभु बचन हरषि मुनिचारी।
पुलकित तन अस्तुति अनुसारी।
जयभगवंत अनंत अनामय।
अनघ अनेक एक करुनामय [6]।

परमानंद कृपायतन मन परिपूरन काम।
प्रेम भगति अनपायनी देहु हमहि श्रीराम।

देहु भगति रघुपति अति पावनि।
त्रिबिध ताप भव दाप नसावनि।
प्रनत काम सुरधेनु कलपतरु।
होइ प्रसन्न दीजै प्रभु यह बरु [7]।

---

१. हरिभक्त रसामृत सिंधु ३/१/४ (संदर्भ - तुलसीकाव्य मीमांसा पृ. २८१)
२. रामचरित मानस १/११६, ३. १/११९, ४. ३/११, ५. ३/१०, ६. ७/३३, ७. ७/३४

प्रेयानभक्ति रस

प्रेयानभक्ति रस का स्थायी भाव प्रेयोरति हैं । सेव्य-सेवक भाव से की गयी भगवद्विषयक रति को प्रेयोरति कहते हैं[1] तुलसी की भक्ति मुख्यतः सेव्य-सेवक भाव की भक्ति हैं । तुलसी काव्य में मुख्यतः प्रेयान भक्तिरस हैं । 'प्रेयोरति की दो वृत्तियाँ हैं दास्य और सख्य । तदनुसार प्रेयान् रस के तीन भेद हैं : दास्य प्रेयान, सख्यप्रेयान, तथा उभयात्मक प्रेयान । तुलसी की लगभग सभी सरस रचनाओं में दास्यप्रधान रस का शक्तिमान् प्रवाह हैं । दास्यभाव उनकी भक्तिरसात्मक कृतियों का अंतर्यामी भाव हैं । यही कारण हैं कि वात्सल्य के आश्रय दशरथ, कौशल्यादि का स्थायी वात्सल्य भी प्रायः तुलसी के स्थायी दास्य से मुक्त नहीं हो सका हैं [2]।'

भरत[3] एवं लक्ष्मण[4] राम के बंधु है तथा सुग्रीव[5] और विभिषणको[6] श्रीरामने मित्र का स्थान दिया है फिर भी वे सभी पात्र दास्य भाव का निवेदन करते हैं । शिव, ब्रह्म आदि ज्ञानी विज्ञानी भी सेव्य सेवकभाव की भक्ति को अनिवार्य समझते हैं ।

---

१. भक्तिरसायण २/११ (संदर्भ - तुलसीकाव्य मीमांसा पृ. २८१)

२. उपरीवत्

३. मानस २/२३४

४. उपरीवत् २/७१

५. उपरीवत् ४/२१

६. उपरीवत् ५/४५

मानस की पारिवारिक भक्तिभावना

मानस में केवल ईश्वर विषयक भक्ति ही नहीं परंतु पारिवारिक भक्तिभाव का भी दर्शन होता हैं, वह मानस की विशेषता हैं । ईश्वर भक्ति द्वारा अलौकिक सुख का परिचय देने के साथ साथ तुलसी परिवार में पारस्परिक प्रेम, भाव, समर्पण, त्याग, बलिदान, सेवा आदि उत्तम गुणों द्वारा, लौकिक सुख की स्थापना करना भी चाहते हैं । इसे लौकिकसुख अथवा कुटुंबप्रेम अथवा सामाजिक स्नेह के परम आदर्श पात्र हैं श्रीराम, लक्ष्मण, भरत शत्रुघ्न, सीता, अवध की प्रजा, आदि । इन पात्रों द्वारा समाज को पारिवारिक भक्ति का बोध होता हैं और एसा बोध कराने के पीछे तुलसी का उद्देश्य रहा हैं - आदर्श परिवारों के द्वारा समाज की स्थापना एवं सामाजिक-मानसिक एवं सामाज में सुख समृद्धि को बढाना । पारिवारीक सुख शांति नष्ट न हो इस लिए मानस में विविध पात्रों में मानो एक स्पर्धा चली हैं । यह स्पर्धा है प्रेम की, त्याग की, सेवा की, समर्पण की । सीता और सुमित्रा तथा उर्मिला जैसे नारी पात्रों ने भी इसमें हाथ बँटाकर यह सुंदर इमारत की नींव बनने का काम किया हैं । इस विषय में हम कुछ उदाहरण देखेंगे ।

मातृ-पितृ भक्ति ।

श्री राम को जब वनवास होता है और यह समाचार कैकई के मुख से जब से सुनते हैं तब श्रीराम सहज ही इस कठोर बात को आनंद से स्वीकारते हुए बोलते हैं ।

मन मुसकाइ भानुकुल भानु । रामसहज आनंद निधानु ।
बोले बचन बिगत सब दूषन । मृदु मंजल जनु बाग बिभूषन ।
सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी । जो पितु मातु बचन अनुरागी ।
तनय मातु पितु तोषनिहारा । दुर्लभ जननि सकल संसारा ।
मुनि गन मिलनु बिसेषि बन सबहि भाँति हितमोर ।
तेहि महँ पितु आयसु बहुरि संमत जननी तोर [१]।।
मंगल समय सनेह बस सोच परिहरिअ तात ।
आयसु देइय हरषि हियँ कहि पुल के प्रभु गात [२]।।
अति लघु बात लागि दुखु पावा । काहुँ न मोहि कह प्रथम सुनावा ।[३]

---

१. रामचरित मानस २/४१, २. २/४५, ३. २/४४

राम वनवास की बात का जब माँ कौशल्या को पता चला तब माँ टूट पडती हैं परंतु श्रीराम अपना पुत्रधर्म और पितृभक्ति निभाने के लिये माँ को सुंदर शब्दों से समझा रहे हैं ।

धरम धुरीन धरम गति जानी [१]।
कहउ मातु सन अति मृदु बानी ।
पिता दीन्ह मोहि कानन राजू ।
जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू ॥
आयसु देहि मुदित मन माता ।
जेहिं मुद मंगल कानन जाता ॥
जनि सनेह बस डरपसि भोरें ।
आनँदु अंब अनुग्रह तोरें ।
बरष चारिदस बिपिन बसि करि पितु बचन प्रमान ।
आइ पाय पुनि देखिहउँ मनु जनि करसि मलात ।

और अंत में राम के समझाने पर माता कौशल्या भी रघुवंश की उज्ञवल किर्ति को तथा कुटुंब शांती तथा कर्तव्य को ध्यान में रखती हुई राम को आज्ञा देकर पिता की आज्ञा का पालन करने का ही उपदेश देती हैं ।

जौं केवल पितु आयसु ताता ।
तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता ।
जौं पितु मातु कहेउ बन जाना ।
तौ कानत सत अवध समाना ।
पितु वनदेव मानु बनदेवी ।
खग मृग चरन सरोसह सेवी ॥
अंत हुँ उचित नृपहि बनबासू ।
बय बिलोकि हियँ होई हराँसू ।
बड भागी बनु अवध अभागी ।
जौं रघुबंस तिलक तुम्ह त्यागी [२]।

१. रामचरित मानस २/५३, २. २/५६

पतिभक्ति

रामवनवास के समय जब श्री राम सीताजी को वन के विविध दुःखों का वर्णन करके घर रहने का आदेश देते है तब सीता एक आर्यनारी के रूप में अपने पातिव्रत्य धर्म को पालन करने पर तुली हैं और अपने ही पति को अपनी पतिभक्ति में रुकावट न डालने की बिनती करती हैं। जो सीताने मिथिला या अवध में कभी किसी भी प्रकार के दुःख को न तो देखा है ना सहन किया हैं। वही सीता आज अपनी पति की छायाँ बनकर उनके साथ वन में जाने में गौरव का अनुभव करती हैं और एक आदर्श नारी, परम पतिव्रता और पतिभक्त के रूप में हमारे सामने आती हैं। सीता के पात्र के द्वारा नारी को सेवा, पातिव्रत्य और त्याग के दिव्य दर्शन होते हैं।

लागि सासु पग कह कर जोरी। छमाबि देबि बड़ी अबिनय मोरी।
मैं पुनि समझि दीखि मन माहीं। प्रिय बियोग सम दुःखु जग नाहीं।
प्रान नाथकरुनायतन सुंदर सुखद सुजान।
तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद बिधु सुरपुर नरक समान [1]।

मातुपिता भगिनी प्रिम-भाई। प्रिय परिवारु सुहद समुदाई।
सासु ससुर गुर सजन सहाई। सुत सुंदर सुसील सुखदाई।
जहँ लगि नाथ नेह अस नाते। पिय बिनु तिमहि तरनिहू ते नाते।
तनु धनु धानु धरनि पुर राजू। पति बिहीन सब सोक समाज्।
भोग रोग सम भूषन भारू। जम जातना सरिस संसारु।
प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं। मो कहुँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं॥
जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी।
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारें। सरदबिमल बिधु बदनु निहारे।

---

१. रामचरित मानस २/६४

२. उपरीवत् २/६५

पति की छत्रछाया में सीता को दुनिया के सारे दुःख सुख लगते हैं, और पति की अनुपस्थिति में विश्व के सारे सुख दुःख रुप हो जाते हैं । पति के चरणों में ही सीता का समस्त सुख समाया हुआ है ।

खग मृग परिजन नगरु बनु बलकल बिमल दुकुल ।
नाथ साथ सुरसदन सम परन सुख मूल ॥

बनदेवी बन देव उदार ।
करिहरिं सासु ससुर सम सारा ।
कुरु किसलय साथरी सुहाई ।
प्रभु सँग मंजु मनोज तुराई ।
कंद मूल फल अमिअ अहारु ।
अवध सौध सत सरिस पहारु ।
छिनु छिनु प्रभु पद कमल बिलोकी ।
रहिहउँ मुदित दिवस जिमि कोकी ।
बन दुःख नाथ कहे बहुतेरे ।
भय विषाद परिताप घने रे ।
प्रभु बियोग लवलेस समाना ।
सव मिलि होहिं न कृपानिधाना ।
अस जियँ जानि सुजान सिरोमनि ।
लेइअ अंग मोहि छाड़िअ जनि ।
बिनती बहु करौं का स्वामी ।
करुनामय उर अंतरजामी ।

राखिअ अवध जो अवधि लगि रहत न जनिअहिं प्रान ।
दीनबंधु सुंदर सुखद सील सनेह निधान [१]।

---

१. रामचरित मानस २/६६

भ्रातृभक्ति

आदर्शसमाज और कुटुम्बप्रेम की स्थापना के लिए तुलसी ने मानस के भ्रातृप्रेम का चित्रण अत्यंत सुंदर रुप से किया हैं । छोटो बड़ों के बीच की मर्यादा और सेवाभाव अति सुंदर रुप से मानस में प्रकट हुआ हैं । लक्ष्मण और भरत की भ्रातृभक्ति अनन्य है । श्रीराम वन में जा रहे हैं – वह समाचार सुनकर ही लक्ष्मण आकुल हो उठते हैं ।

समाचार जब लछिमन पाए ।
ब्याकुल बिलख बदन उठि धाए ।
कंपपुलक तन नयन सनीरा ।

गहे चरन अति प्रेम अधीरा [१]।

जो राम अवध छोडकर वन में जाते हैं तो लक्ष्मण अवध में कैसे रह सकते हैं ? वह भी प्रभु के साथ उनकी सेवा में जाने मे कार्य तत्पर और व्याकुल हैं ।

मो कहुँ काह कहब रघुनाथा ।
रखिहहिं भजन कि लेहहिं साथा [२]।

---

१. रामचरित मानस २/७०

२. उपरीवत्

श्रीराम लक्ष्मण को अवध में रहकर माता-पिता और परिवार का ध्यान रखने की आज्ञा देते हैं परंतु भ्रातृभक्ति के वश होकर लक्ष्मण अत्यंत दीन भाव से राम से बिनति करते हुए कहते हैं कि -

उतरु न आवत प्रेम बस गहे चरन अकुलाई ।
नाथ दासु मैं स्वामि तुम्ह तजहूँ त काह बसाई [1]।

मैं सिसु प्रभु सनेहँ प्रतिपाला ।
मंदरु मेरु कि लेहि मराला ।
गुरु पितु मातु न जानउँ काहू ।
कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू ।
जहँ लगि जगत सनेह सगाई ।
प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई ।
मोरें सबई एक तुम्ह स्वामी ।
दीनबंधु उर अंतरजामी ।
धरम नीति उपदेसिअ ताही ।
कीरति भूति सुगति प्रिय जाही ।
मन क्रम बचन चरन रत होई ।
कृपा सिंधु परिहरिअ कि सोई ।

करुना सिंधु सुबंधु के सुनिमृदु बचन बिनित ।
सुमुझाए लाइ प्रभु जानि सनेहँ सभीत [2]।

---

१. रामचरित मानस २/७१

२. उपरीवत् २/७२

भरत की भ्रातृभक्ति जैसा अन्य दृष्टांत शायद विश्व साहित्य में मिलना असंभव है । भरत की अनुपस्थिति में अवध में जो कुछ भी हो गया इसमें वह निर्दोष है इस बात को सिद्ध करने के लिये माँ कौशल्या के चरणों में रोते हुए भरत पूरे विश्व को पापों को अपने पर लेने के लिए तैयार हैं ।

जे अध मातु पिता गुरु मारे ।
गाइ गोठ महिसुर पुर जारें ।
जे अघ तिय बालक बध कीन्हें ।
भीत महीपति माहुर दीन्हे ।
जे पातक उपपातक अहहीं ।
करम बचन मन भव कबि कहहीं ।
ते पातक मोहि होहुँ बिधाता ।
जौं यहु होई मोर मत माता ।
जे परिहरि हरि हर चरन भजहिं भूतगन घोर ।
तेहि कर गति मोहि देउ बिधि जौं जननी मत मोर [१]।

गुरु वरिष्ठजी जब भरत को सत्ता के सूत्र संभालने की आज्ञा देते हैं और विविध शास्त्र-पुराण के दृष्टांतो द्वारा समझाने का प्रयत्न करते हैं । नव

१. रामचरित मानस २/१६७

भारत बहुत स्पष्ट रुप से सत्ता स्वीकार करने का विरोध करता हुआ अपने विचार प्रकट करता हैं । वहाँ भ्रातृभक्ति का दिव्य दर्शन होता हैं ।

गुरु पितु मातु स्वामि हित बानी ।
सुनि मन मुरिदत करिअ भलि जानी ।
उतरु देउँ छमब अपराधू ।
दुखित दोष गुन गनहिं न साधू ।
पितु सुरपुर सिय रामु बन करन कहहु मोहि राजु ।
एहि तें जानहु मोर हित कै आपन बड़ काजु [1]।।

श्री राम के बिना भरत को अवध और अवध का राज्य निरर्थक लग रहा हैं ।

बादि बसन बिनु भूषन भारु ।
बादि बिरति बिनु ब्रह्मबिचारु ।
सरुज सरीर बादि बहु भोगा ।
बिनु हरि भगति जायँ जप जोगा ।
जायँ जीव बिनु देह सुहाई ।
बादि मोर सबु बिनु रघुराई [2]।

स्वयं की माँ के द्वारा राम को बनबास हुआ, इस बात को लेकर भरत स्वयं को कोस रहा हैं ।

मोर जनम रघुबर बन लागी ।
झूठ काह पछिताउँ अभागी ।
आपनि दासन दीनता कहउँ सबहि सिसनाइ ।
देखें बिनु रघुनाथ पद जिय कै जरनि न जाई [3]।

---

१. रामचरित मानस २/१७७
२. उपरीवत् २/१७८
३. उपरीवत् २/१८२

भरत श्री राम को मिलने जाने का निर्णय लेता है और इस निर्णय में भरत का असाधारण भ्रातृभाव प्रकट होता हैं ।

आन उपाउ मोहि नहिं सुझा । को जिय कै रघूबर बिनु बूझा ।
एकहिं आँक इहइ मन माहीं । प्रातकाल चलिहउँ प्रभु पाहीं [१]।

वनमें जब चित्रकूट पर भरत और राम का मिलाप होता है तब देखनेवाले सभी अपन देहकी सुधी विसार बैठते हैं । कितना दिव्य होगा वह भ्रातृप्रेम !

बरबस लिए उठाई उर लाए कृपानिधान ।
भरत राम की मिलनि लखि बिसरे सबहि अपान [२]।
मिलनि प्रीति किमि जाइ बखानी । कविकुल अगम करम मन बानी ।
परम प्रेम पूरन दोऊ भाई । मन बुधि चित अहमिति बिसराई [३]।

चित्रकूट के बाद श्री राम की आज्ञा से जब भरतजी वापस लौटते हैं तभी भी भरतजी चौदह साल की अवधी तक कोई अवलम्बन चाहते हैं और भगवान श्री राम भरत को अवलंबन के लिए स्नेह से वशीभूत होकर कृपा करके अपनी खडाऊँ देते हैं । दोनो खडाऊँ को जो आदर के साथ भरत अपने सिर पर धारण करता है इस वर्णन में केवल भरत का गुरुबंधु के प्रतिका केवल प्रेम नहीं परंतु भक्तिपूर्ण प्रेम की पराकाष्ठा का दर्शन होता हैं ।

प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्हीं ।[४] सादर भरत सीस धरि लीन्ही ।
चरन पीठ करुनानिधान के । जनु जुग जामिल प्रजा प्रान के ।
संपुट भरत सनेह रतन के । आखर जुग जनु जीव जतन के ।
कुल कपाट कर कुसल करम के । बिमल नयन सेवा सुधरम के ॥
भरत मुदित अवलंब लहे तें । अस सुख जस लिय रामु रहे ते ।
मागेउ बिदा प्रनामु करि राम लिए उर लाई ।
लोग उचाहे अमरपति कुटिल कुअवसर पाइ ।

इस प्रकार तुलसी ने राम-भरत-लक्ष्मण-शत्रुघन के पात्रों के द्वारा भ्रातृभक्ति का उत्तम आदर्श स्थापित किया हैं ।

---

१. रामचरित मानस २/१८३, २. २/२४०, ३. २/२४१, ४. २/३३६

स्वामीभक्ति

अवध के लोग श्रीराम को अपने नेता, स्वामी या राजा के रुप में आदर करते थें । अवध के समाज का श्री राम के प्रति जो अनन्य स्नेह और भक्ति है वह रामवनवास के समय इस प्रकार से प्रकट होते हैं ।

चलन राम लखि अवध अनाथा [1]।
बिकल लोग सब लागे साथा ।
कृपसिंधु बहुबिधि समुझावहिं ।
फिरहिं प्रेम बस पुनि फिरि आवहिं ।
लागति अवध भयानक भारी ।
मानहु कालराति अंधिआरी ।
घोर जंतु सम पुर नरनारी ।
डरपहिं एकहिं एक निहारी ।
घर समान परिजन जनु भूता ।
सुत हित मीत मनहुँ जमदूता ।

प्रभु के विरह में अवधवासीयों की दीन मनोदशा का अति मार्मिक वर्णन से ही लोगों की स्वामी भक्ति का दर्शन होता हैं । सब लोग अपने घर, परिवार और सुख समृद्धि को तृन की भांत छोडकर प्रभु के पीछे जाने लगे । प्रभु के अनेक भांति समजाने पर भी वे लोग वापस नहीं लौटते हैं ।

सबहिं बिचारु कीन्ह मन माहीं [2]।
रामलखन सिय बिनु सुख नाहीं ॥
जहाँ रामु तहँ सबुइ समाजू ।
बिनु रघुबीर अवध नहिं काजू ।

---

१. रामचरित मानस २/८३
२. उपरीवत् २/८४

केवल युवान लोग ही नहीं परंतु आबालवृद्ध भी घरछोडकर वनवासी राम का साथ दे रहे हैं ।

बालक वृद्ध बिहाइ गृहँ लगे लोग सब साथ [1]।
तमसा तीर निवासु किय प्रथम दिवस रघुनाथ ।

श्री राम के साथ भेजे गये मंत्री सुमंत्र का श्री राम के प्रति अनन्य स्नेह का वर्णन भी अति मार्मिक हैं । सुमंत्र जैसे बुजुर्ग मंत्री का राम के चरणों में गिरना और बच्चे की भांति रोना यह दशरथ के प्रति राजभक्ति और निष्ठा का ही प्रमाण है । अपने स्वामी दशरथ की आज्ञा हैं कि राम को कुछ दिन वन में घूमाकर वापस लाना । परंतु राम जब चौदह सालके लिये ही वन में आगे बढ़ रहे हैं और सुमंत्र को खाली रथ लेकर वापस लौटना पडता है तब राजा की आज्ञा का पालन नहीं हो सकने से सुमंत्र की व्यथा का वर्णन पाठक को भी रुला देता है ।

नृप अस कहेउ गोसाईं जस कहइ करौं बलि सोई ।
करि बिनति पायन्ह परेउ दीन्ह बाल जिमि रोइ [2]।

तात कृपा करि कीजिअ सोई ।
जातें अवध अनाथ न होई ।
मंत्रिही राम उठाइ प्रबोधा ।
तात धरम मतु तुम्ह सब बोधा [3]।
सुनि सुमंत्र सिय सीतलिबानी ।
भयउ बिफल जनु फनि मनि हानी ।
नयन सूझ नहिं सुनइ न काना ।
कहिन सकइ कछु अति अकुलाना [4]।
राम लखन सिय पद सिसनाई ।
फिरेउ बनिक जिनि मूर नवाँई [5]।
बरबस राम सुमंतु पठाए... [6]।

---

१. रामचरित मानस २/८४, २. २/९४, ३. २/९५, ४-५. २/९९, ६. २/१००

श्री राम के प्रति पशु और जड़ तत्वों की भक्ति

आध्यात्मिक एवं लौकिक भक्ति का अनूठा दर्शन तो 'मानस' में होता ही हैं परंतु कविता-कानन-केसरी श्री तुलसीदास ने अपने काव्य में पशु और जड़ों के प्रेम का जो हृदयद्रावक वर्णन किया हैं वह अन्य साहित्य में दुर्लभ अथवा नहीवत् हैं । और इस प्रकार के उदाहरण में श्रीराम वनवास के समय पशुओं की स्थिति, खाली रथ लेकर वापस लौटते हुए सुमंत के रथ के अश्वों की दशा तथा हनुमान जी की सेवा में मैनाक का जल में प्रकट होना, भरत की सेवा में जलद का आकाश में प्रकट होना तथा राम के वनवास के दौरान राम की सेवा में वृक्षों का फलना-फूलना आदि जडों की भक्ति का भी अद्‌भुत दर्शन होता हैं ।

बागन्ह बिटप बेलि कुन्हिलाहीं ।
सरित सरोवर देखिन जाही ।
हय गन कोहिन्ह केलिमृग पुरपसु चातक मोर ।
पिक रांग सुक सारिका सारसहंस चकोर [१]।

राम बियोग बिकल सब ठाढ़े [२]।
जहँ तहँ मनहुँ चित्र लिखि काढे ।
रथु हांकेइ हय राम तन हेरि हेरि हिहिनाहिं [३]।
देखि निषाद बिषादबस धुनहिं सीस पछिताहिं ।

जल निधि रघुपति दूत बिचारी ।
तैं मैंनाक होहि श्रम हारी ।
हनूमान तेहि परसाकर पुनि तिहि किन्ह प्रनाम [४]।
राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम ।

इस प्रकार मानस में केवल चेतन के द्वारा ही नहीं परंतु पशु, पक्षी और जड़ तक में श्री रामभक्ति का सुंदर दर्शन होता है ।

---

१. रामचरित मानस २/८३, २. २/८४, ३. २/९९, ४. ५/--- ।

रामचरित मानस में दर्शन

अध्याय ५

भूमिका के दर्शनानुसार राम / तुलसी दास / सच्चिदानंद स्वरूप राम/ सगुण ही निर्गुण और निर्गुण ही सगुण / सगुण निर्गुण में अभेद्य / राम की मनुष्यलीला में माया का आश्रय / निर्गुण की अपेक्षा सगुण स्वरूप गूढ़ / सगुण राम में मोह होने का कारण अज्ञान / विष्णु अवतार श्री राम / परब्रह्म विष्णु/ राम विष्णु से भी श्रेष्ठ / राम का सामर्थ्य / राम के विविध अवतार / राम के अवतार का हेतु / लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्न अंशावतार / शेषावतार लक्ष्मण/ शेषावतार अखिल विश्व का कारण / ब्रह्म लक्ष्मण / विश्व का पोषक भरत/ शत्रुसूदन शत्रुघ्न / वनरादि में देवत्व / वनरादि की सगुण ब्रह्मोपासना / सीता/ योगमाया सीता / मूल-प्रकृति सीता लक्ष्मीस्वरुपा सीता / सीता का लक्ष्मी से भिन्नत्व / मायास्वरुपा सीता / माया का कार्य / अखिल ब्रह्मांड मायावश/ ब्रह्म के बल से माया की क्रियाशीलता / ब्रह्म के बल से जड़माया का सत्य भासना / माया पर राम का आधिपत्य / जगत् / विश्वरुप विराट् / मायाजनित जगत् वृथा और केवल राम सत्य / जगत् स्वप्नवत् / जीव / जीव का स्वभाव/ ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी जीव की कक्षा में / जीव का अक्षरत्व / जीव और ईश्वर में अभेद्य / आत्मानुभूति से भ्रमनिवारण / मायावश जीव / जीव की गति कर्मानुसार / विद्या और अविद्या / ब्रह्मज्ञान से भेदभ्रम और आवागमन का अंत / ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति से जीव की ब्रह्ममयता / बोध ज्ञान / परमार्थ/ मनुष्य देह की दुर्लभता और मनुष्य देह परमार्थ मार्ग के लिये श्रेष्ठ ।